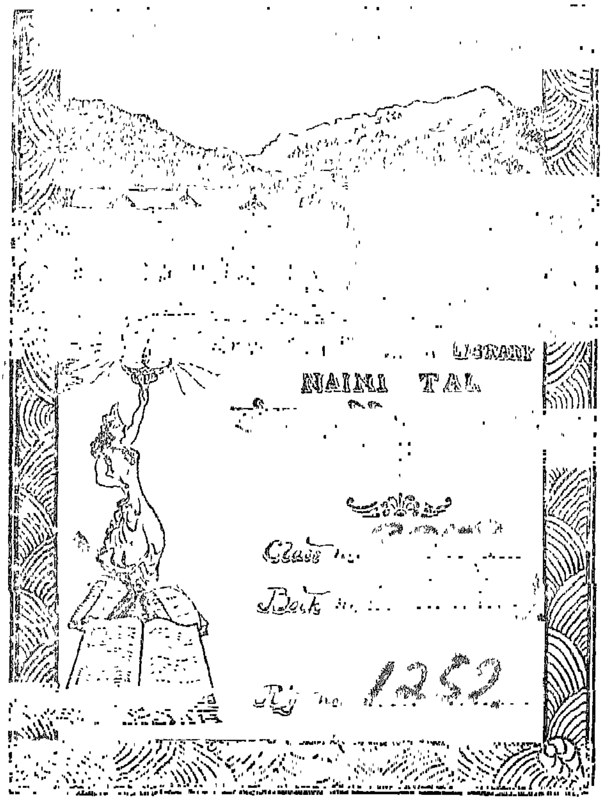

LIBRARY
NAINI TAL
Class No.
Book No.
Reg. No. 1292

# १

पिता का आदर-प्यार तो उसने जाना भी नहीं था। जन्म लेने के सातवें महीने ही में उसके पिता हिन्दू-मुस्लिम दंगे के शिकार हो गये थे। दशहरे का अवसर था। चारों ओर उत्सव मनाये जा रहे थे। 'राम-दल' उठने वाला था। स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ हज़ारों की संख्या में 'राम-दल' देखने के लिए जमा थी। लोग खुशियाँ मना रहे थे। एकाएक हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे की खबर सारे शहर में बिजली की तरह फैल गई। चारों ओर हङ्गामा मच गया'''।

ज्यादा कहानी को बढ़ाना नहीं, केवल इतना ही कहना है कि उसी दङ्गे में एक भद्र-महिला की रक्षा में उन्हें अपने प्राणों की भेंट चढ़ानी पड़ी। आज उस बात को बहुत दिन बीत गये, पर फिर भी उस बात का कहानी से कितना बड़ा सम्बन्ध है।

पिता की मृत्यु के बाद ही से माँ की भी दशा दिन प्रति दिन बिगड़ती गई। जिस दिन उसकी माँ ने पति के मरने का समाचार सुना, उसी क्षण उसे मूर्च्छा आ गई। तीन घण्टे के पश्चात् होश आया। भरी जवानी ही में उसका सुहाग लुट चुका था, उसके माथे का सिन्दूर पुँछ गया था और उसकी चूड़ियाँ टूट गई थीं।

कुन्ती! तुमने अपने रुदन से, अपने क्रन्दन से सारे आसमान को क्यों नहीं कम्पित कर दिया!

तब से उसे अक्सर बेहोशी आ जाती। धीरे-धीरे यह भयंकर रोग, दौरे की बीमारी में परिणत हो गया। तीसरे-चौथे उसे गश आ जाता

और घंटों के बाद फिर चेतना आती। कुन्ती का जीर्ण-शीर्ण शरीर रोग-ग्रसित होकर दिन-दिन दुर्बल होता गया। बात-बात पर उसे क्रोध आ जाता, और उसी क्रोध के आवेश में वह सब कुछ कह-सुन डालती। आरम्भ में जब उसके ऊपर इन विपत्तियों का पहाड़ टूटा था तो उसके प्रति कितने ही लोगों ने सहानुभूति दिखलाई थी। कुन्ती की देवरानी ने भी कम सेवा-सत्कार नहीं किया। पर मृत्यु के रोगी को कौन बचा सका है? और सच बात तो यह है कि सहानुभूति की भी सीमा होती है—उसकी एक मियाद होती है। जैसे-जैसे मियाद पूरी होती जाती है, सीमा निकट आती जाती है, वैसे-वैसे सहानुभूति भी कम होती जाती है।

पहले कुन्ती जब कभी बेहोश होती तो मुँह पर पानी छिड़कने और सूखे कण्ठ में पानी डालने से उसे होश आ जाता था। दिन भर में प्रायः उसे दस-बारह बार अवश्य ही बेहोशी आ जाती थी। और जल-उपचार ही से उसे पुनः होश में लाया जाता था। पहले ही बताया जा चुका है कि उसके चिड़चिड़ेपन के कारण उसकी देख भाल करने वालों ने भी उसके कमरे का द्वार यों ही खुला छोड़ दिया था, कोई अब उधर आने का भी नाम नहीं लेता था। संसार में जैसे कुन्ती अकेली थी और था उसका एक मात्र साथी उसी का पुत्र विकर्ण।

विकर्ण की अवस्था केवल पन्द्रह महीने की थी, पर जैसे परमात्मा ने उसे संसार का सब ज्ञान समझा-बुझा कर भेजा था। संसार की माया-ममता उसके नन्हें से हृदय में कूट-कूट कर भर दी थी। वह अपने चिड़चिड़ेपन के कारण विकर्ण को भी मार देती; पर जैसे विकर्ण को अणु-मात्र भी माख न लगता। वह केवल ज़रा सा रोकर ही फिर माँ को प्रसन्न करने का प्रत्येक स्वांग रचने का उपक्रम करने लगता। माँ दिन-दिन गिरती गई, गिरती गई!

एक दिन जब वैशाख-जेष्ठ की लू मकानों की दीवारों से टकरा कर चीत्कार कर रही थी, बाहर आग बरस रही, थी तब माँ पृथ्वी पर

होश पड़ी थी। विकर्ण माँ के सिरहाने बैठा रो रहा था। अपने छोटे-छोटे कोमल हाथों से माँ के माथे पर पानी थपथपा रहा था। उसकी आँखों से आँसू बहते थे—बहते थे। थोड़ी देर बाद माँ ने पलकें खोलीं और बैठे हुए गले से केवल इतना ही कहा—'पानी !'

माँ का कण्ठ सूख रहा था। उसकी बेचैनी बढ़ रही थी। पास में कोई भी नहीं था जो उसके मुँह में एक बूँद भी पानी डाल सकता। माँ मारे प्यास के विकल हो उठी। उसका गला बैठ गया। उसने फिर मरी-सी आवाज़ में कहा—'पानी !'

विकर्ण उठा। उसने माँ के कपोलों को छूकर गिलास की ओर सङ्केत किया और···ऐं···ऐं···ऐं···करता हुआ गिलास की ओर बढ़ा।

माँ ने उत्साहित होकर कहा—'हाँ, वही।'

विकर्ण ने गिलास मां के मुँह से लगाते हुए एक सुख की साँस ली। माँ की आँखों में प्रेम के आँसू उमड़ आये।

पर माँ-बेटे का यह सम्बन्ध अधिक दिनों का नहीं था। आख़िर कुछ ही दिनों बाद विकर्ण अनाथ हो गया।

माँ, तुम उस भोले-भाले विकर्ण को किस पर छोड़ कर चली गईं? क्या इतनी जल्दी चला जाना तुमको अच्छा लगा? क्या जाते समय तुम को उस अबोध विकर्ण का कुछ भी ध्यान न आया जो अपने मांस के छोटे से लोथड़े के भीतर तुम्हारी सेवा का महाव्रत छिपाये जीवन संग्राम में उतरा था।

# २

माघ बीत चुका था। फालगुन का महीना था और हलका गुला जाड़ा पड़ रहा था। साँझ-सबेरे नशीली हवा बहती; रात को आकाश से शुभ्र-शीतल चाँदनी बरसती। एक-एक कर धीरे-धीरे पेड़ों के पत्ते झड़ते। एक-एक करके कोपलों से सुसज्जित डालें हिलतीं, आम्र-कानन में पवन आम के बौरों की मस्तानी सुगन्ध बखेरता फिरता। कहीं कोयल किसी डाल में छिपी-छिपी पुकार उठती—'कुहू-कुहू।' कहीं दूर पर बैठा पपीहा शोर कर उठता—'पी कहाँ-पी कहाँ।'

चारों ओर मस्तानेपन का साम्राज्य था। संसार इसी मस्ती में पागल-पागल-सा घूमता। सब अपने-अपने में भूले से थे; जैसे यही संसार का नियम है, यही उसका सुन्दर-सा रूप है।

इधर-उधर दोनों ओर, सड़क के किनारे-किनारे, ऊँचे-ऊँचे घर खड़े थे, सड़क की पटरियों पर छोटी-बड़ी सभी तरह की दूकानें थीं। चौमुहानी से ज़रा दूर हटकर एक 'लेन' थी। लेन के दोनों ओर मकान थे। लेन के निकास पर एक पानवाले की दूकान थी। दूकान पर एक सुन्दर-सी स्त्री भी बैठती। पानवाला—उसी स्त्री का स्वामी, एक कसरती जवान था और 'वीणा' बजाने का उसे शौक़ था। वह दूकान पर बैठकर एक ओर वीणा बजाता और उसकी स्त्री बैठकर प्रान लगाती। राह चलने वाले इच्छा न रहने पर भी उसकी दूकान से दो बीड़े पान अवश्य खा लेते।

दूकान के आगे एक बड़ा-सा नीम का पेड़ था। नित्य उसकी झुकी

डालें दूकान की खपरैल पर हिलती-डुलतीं। गर्मियों में उससे छोटे-छोटे फूल झड़ते; सावन में निबौरियाँ टपकतीं।

रास्ता अधिक चालू नहीं था; एक्के-गाड़ी तो कदाचित् ही उधर से निकलते। उसका पान दूर-दूर तक मशहूर था, उसकी दूकान का दूर-दूर तक नाम था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि पान-वाला...'वाली, को भगा लाया है और दोनों बनारस के रहने वाले हैं। खैर, कुछ भी हो, कहने का तात्पर्य यह है कि उसके बंधे हुए ग्राहक थे। उसे अपनी बँधी हुई आमदनी ही से सन्तोष था कितनी ही बार और कितने ही लोगों ने उससे किसी मशहूर जगह में—चौक, मुहम्मदअली पार्क और जानसेनगंज में दूकान रखने की राय दी, उसे अधिक आमदनी का प्रलोभन दिया; पर हर बार उसने मुस्कराकर ही बात टाल दी। उसे दौलत नहीं चाहिए थी; वह चाँदी के चमकते हुए टुकड़ों के बीच अपने को खोना नहीं चाहता था। उसकी वीणा फिर बेकार न हो जाती ?

फालगुन का महीना था; स्वच्छ आकाश चारों ओर फैला था। अगणित सुन्दर तारे बिखरे पड़े थे। सूरज डूब चुका था। दूकानवाला नीम के नीचे छिड़काव करके खाट पर वीणा लिये बैठा था दूकान वाली पान लगा रही थी।

खिड़की खोलकर अनुराधा, लालटेन सामने धरे कोर्स की किताब पढ़ रही थी। उस पार से पवन का एक धीमा-सा झोंका आया और वीणा के तारों में जैसे दूकानदार की अँगुलियाँ झंकार कर उठीं। वीणा की झंकृत स्वर-लहरी में दूकानदार का स्वर अस्पष्ट सुनाई पड़ा—

"वीणा के झूठे पड़ गये तार।
जीवन बीन मधुर ना बाजे ॥"

घड़ी भर के लिए जैसे अनुराधा का मन उचट गया। उसकी पढ़ाई रुक-सी गयी। किताब से सिर ऊपर-उठा कर वह निरीह-भाव से खिड़की के उस पार भूली-भूली-सी देखने लगी। बड़ी देर तक एकटक

चुपचाप उधर ही को देखतीं रही, देखती रही। दूकानदार की वीणा अब भी झनझना रही थी।

अनुराधा अचेत-सी बैठी कुछ देखती रही...फिर उसे जैसे होश आया; तभी सहसा जाना कि सामने के घर की खिड़की भी खुली है। सारा कमरा प्रकाश से आलोकित है। मेज़ पर टेबिल-लैम्प जल रहा है और सामने 'कोई किताब खोले बैठा है।

अनुराधा चौंक-सी उठी। उसने धीरे से अपनी खिड़की का एक किवाड़ बन्द कर दिया।

उसी दिन से यह रोज़-रोज़ का नियम हो गया, उसका दैनिक प्रोग्राम हो गया कि अगर वह सामने की खिड़की खुली देखे तो अपनी खिड़की बन्द कर ले जिससे उधर की कोई भी वस्तु न दिखाई पड़े—न पढ़ने वाले की पढ़ाई-लिखाई और न उसका मुख ही!

पर लाख प्रतिबन्ध लगाने पर भी अनुराधा अपने मन को वश में न कर सकी; किताब पढ़ते-पढ़ते जब उसका जी उचट जाता, तबियत भारी-भारी हो जाती, तो खिड़की के एक कोने से दृष्टि फिरा कर उस पार की खिड़की को देख लेती, देख लेती—वह बैठा, पुस्तक पर दृष्टि जमाये, सिर झुकाये पढ़ रहा है, पढ़ रहा है। उसने एक बार भी इधर नहीं देखा और देखेगा भी नहीं। जैसे पढ़ना ही उसके लिए सब कुछ है और जीवन में कोई चीज़ नहीं, कोई वस्तु नहीं।

वह प्रतिदिन पढ़ते-पढ़ते एक-आध बार दृष्टि डाल कर देख लेती है—खिड़की खुली है, पर इस ओर देखने का किसी को भी आग्रह नहीं है। जैसे पुस्तक ही उसका सब कुछ है। कभी पुस्तक से इस ओर को दृष्टि आ ही नहीं सकती, आनी ही नहीं चाहिए।

फिर वह क्यों अपनी खिड़की का एक पट बन्द कर लेती है? उसे लगा जैसे यह उसकी कोरी मूर्खता है; कोई इधर देखता भी तो नहीं! मन के भीतर-भीतर यह द्वन्द आखिर चलता रहा, चलता रहा—और

एक...फिर एक दिन दीख पड़ा --अनुराधा ने भी अपनी खिड़की का पट खोल लिया है !

मानव-हृदय जैसे कितना दुर्बल है कितना कमज़ोर है। मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों का बना हुआ हृदय जो अपने विचारों ही की सहायता से मानो एक सूत्र में बँध कर हृदय कहलाता है—वही हृदय अपनी भूल जान लेने पर बिखर पड़ता है। इसीसे फिर ज्ञात होता है, जितने विचार हैं—जितनी भी भावनायें हैं—सभी में मानो एक त्रुटि, एक भयंकर भूल छिपी हुई है। फिर खिड़की पूरी खुली रही, दिन में भी खुली रहती और रात में भी प्रातः संध्या—हर समय खुली रहती। दिन बीतकर सप्ताह में परिणत होते गये और इसी तरह सप्ताहों की भी संख्या होती गयी। अनुराधा के मन में जैसे कोई आकांक्षा बार-बार चुभती—उसे बार-बार इच्छा होती—कोई धोखे से या जान-बूझकर भी तो इधर देख ले। अनुराधा कुछ न कहेगी, किसी से भी न कहेगी। वह रत्ती मात्र भी नाराज़ न होगी—फिर भी कोई भूल कर भी इधर नज़र न डालता।

जैसे-जैसे दि। बीतने लगे, यह परिस्थिति भी धीरे-धीरे अनुराधा को असह होने लगी। उसके हृदय में कुछ चुभता, कुछ खटकता। सुबह किताब खोलकर पढ़ने, कापी खोलकर स्कूल का काम करते, शाम को खिड़की खोलकर संध्या के सूर्य की लाली देखते, रात को लालटेन सामने रखकर अनुराधा उधर कई बार देखती। देखती—उधर की खिड़की सूनी है; फिर कभी देखती, कोई किताब पर झुका बैठा पढ़ रहा है। अनुराधा को जाने कैसा-कैसा लगता। अब उसकी रात की पढ़ाई में कुछ बाधा होने लगी।

नीचे 'पानवाला' बीणा बजा कर झूमता, उसकी झंकृत स्वरलहरी चारों ओर काँपती डोलती। घड़ी भर अनुराधा अपनी किताब बन्द कर देती, पढ़ने से रुक जाती, रुक कर उधर देखती—लालटेन जल रही है, किताबें खुली हैं तीन-चार, और कोई मूर्तिवत् बैठे कुछ लिख रहा है !

उसकी पढ़ाई में बाधा पड़ने लगी। उसका मन भीतर ही भीतर काँपने लगा !

क्यों काँप रही हो अनुराधा ? तुम्हारे मन की बात तो कोई भी नहीं जानता, फिर तुम क्यों चिन्तित हो अनुराधा ?

हमेशा की तरह अनुराधा पढ़ने बैठी थी। जी नहीं हो रहा था कुछ करने को। क्या पढ़े ? पढ़ने में दिल नहीं लग रहा था। मन उचटा-उचटा-सा था। एक किताब खोली, फिर उसे बन्द कर दी। दूसरी खोली; वह भी बन्द कर दी। फिर कापी का एक पन्ना खोलकर कुछ फाउण्टेनपेन से लिखा। शायद कुछ ग़लत लिख गई या अक्षर सुन्दर नहीं बने। पन्ना फाड़ दिया। दूसरा पेज उलटा; उस पर भी दो तीन लाइनें लिखीं। जी उचट गया। क़लम रख दिया और मुँह को दोनों हाथों पर टेक कर बैठ गई। कुछ सोचने लगी, कुछ सोचने लगी !...जाने क्या-क्या ? और जाने कैसे-कैसे उसके विचार कहाँ-कहाँ बिखरने लगे।

खिड़की के उस पार उधर दूसरी खिड़की में कोई लैम्प जलाये बैठा पढ़ रहा है चुपचाप। एकाग्र चित्त होकर कैसा पढ़ रहा है, जैसे उसे केवल पढ़ना ही है और...कुछ नहीं, कुछ नहीं !

देख कर अपने ऊपर बड़ी झुँझलाहट आई। मेरा जी क्यों नहीं लग रहा है आज पढ़ने में ! क्यों जी आज उचटा-उचटा-सा हो रहा है ?

उठ कर थोड़ी देर टहलती रही, फिर एक गिलास पानी पिया। आलमारी खोल कर बाँसुरी निकाली, उसे थोड़ी देर बजाती रही अलग मध्य कमरे में खिड़की से दूर। फिर बाँसुरी को भी यथास्थान रख दिया। चित्त अब शान्त था। चुपचाप खिड़की पर आ बैठी; किताब खोली और पढ़ना शुरू कर दिया। अनुराधा भी पढ़ना जानती है, वह भी एकाग्र भाव से पढ़ सकती है। वह किसी से कभी पीछे नहीं रह सकती।

अनुराधा पढ़ती रही। आधा घंटा बीता, एक बीता, फिर डेढ़

हुआ, पर अनुराधा अब भी पढ़ती रही। पास-पड़ोस में किसी के घर से चोर-चोर की आवाज़ आई। सारे मुहल्ले में चोर-चोर ही की पुकार सुन पड़ने लगी। अनुराधा की भी पढ़ाई में बाधा पड़ी। उसने खिड़की के उस पार देखा—वह भी बैठा उसी ओर देख रहा था। दोनों की आंखें पल भर के लिए मिल गईं। अनुराधा कट-सी गई।

अनुराधा यह तुमने क्या किया ? क्यों नहीं तुमने आज खिड़की का द्वार बन्द किया ? क्यों तुम एकटक उसकी ओर देखती रही, देखती रही ! उसने अपने मन में क्या सोचा होगा ?

रात को आज खिड़की का द्वार बन्द नहीं हुआ, केवल अनुराधा होश आते ही न जाने कब चुपके से वहाँ से खिसक आई ?

दूसरे दिन सुबह अनुराधा ने डरते-डरते उधर नज़र डाली। वह टेबिल के सहारे बैठा चाय पी रहा था। सामने चाय का सेट रखा था। अनुराधा चुपचाप-सी वहीं कुछ देर तक खड़ी रही—देखती रही अचल-अटल-सी। वह चाय पीकर कमरे से उठ गया। खट् से उसने अपनी खिड़की बन्द कर ली। अनुराधा ने खट् से खिड़की का बन्द होना भी, सुना और अपनी भी खिड़की खट् करके शिथिल हाथों से अकारण ही बन्द कर दी; फिर अकारण ही खिड़की खोल कर उसी ओर, उसी प्रकार देखने लगी। उधर की खिड़की अब भी बन्द थी !......यह क्यों अनुराधा, तुम्हें क्या हो गया है'

स्कूल गई। स्कूल में सदा की भाँति अपनी सहेली तारा से एक-एक बात कही। एक-एक बात तारा ने पूछी और एक-एक बात अनुराधा ने बताई—'कल तो हम लोगों ने एक-दूसरे को देखा—?"

"कैसे ?"

तब सब बात बतलाई उसे। सुन कर तारा पुलकित हो उठी। हँस कर पूछा..."इसके पहले 'उन्होंने' कभी तुम्हारी ओर नहीं देखा...?"

"नहीं।"

"कभी नहीं ?"

"न ।"

"क्या थोड़ा- बहुत भी नहीं, कभी भूल कर भी नहीं !"

अनुराधा ने मानो खीज कर उत्तर दिया—"कह तो दिया उसने कभी इधर भूलकर भी नहीं देखा था ।"

तारा ने इस बार तनिक छेड़ कर, हँस कर और अनुराधा का हाथ दबा कर पूछा "और तुम देखा करती थीं ?"

अनुराधा ने अचकचा कर कहा—"नहीं तो !" उसने तारा के हाथों से अपना हाथ नहीं छुड़ाया ।

तारा मुस्कराती रही, मुस्कराती रही। उसने फिर पूछा—"तो फिर तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि वे इधर—तुम्हारी ओर देखते ही नहीं थे ?"

अनुराधा ने आँखें नीची किये-किये उत्तर दिया, कुछ कम्पित स्वर में—"योंही मालूम हो गया; पढ़ते रहते हैं हर वक्त ।"

"क्यों झूठ बोल रही हो अनुराधा ? क्यों छिपा रही हो ?"

उसी समय स्कूल का घण्टा बजा । दोनों सहेली क्लास में आकर बैठ गईं । टीचर के आने में देर थी । वह सदा पाँच-दस मिनट लेट कर के आती हैं । पास-पास बैठ गईं दोनों सहेली । तारा ने समझाते हुए कहा—"अच्छा, क्या आज ही पहले-पहले देखा है ?"

"हाँ"।

"अच्छा, तो फिर देखना आज से क्या होता है ?"

"क्या होगा ?"—विस्मित-स्वर में अनुराधा ने पूछा ।

उससे भी विस्मित-स्वर में तारा ने उत्तर दिया—"क्या होगा ? अरे होगा क्या, जब देखोगी तब उन्हें खिड़की पर खड़े इसी ओर देखते पाओगी !"

अनुराधा को जाने कैसा लगा । उसने केवल प्रश्न-सूचक दृष्टि से ताक कर पूछा—"सच !"

"और नहीं तो क्या, अब तक तो तुम्हें देखा भी नहीं था, अब

तो जो तुम्हें देख लिया है न, बस हर समय तुम्हारी ही ओर देखना चाहेंगे !"

अनुराधा ने मुँह फिरा कर कहा—"चुप भी रहो, क्या उल-जलूल बक रही हो।"

पर तारा न मानी, कहती ही गई—"ख़ूब तुम्हारी ओर देखेंगे। तुम्हें ख़ूब ही दिक करेंगे। तुम्हारी ओर इशारे करेंगे। और अगर फिर भी तुम उधर न देखोगी तो आवाज़ें कसेंगे, तुम्हारी गाड़ी के पीछे-पीछे साइकिल चलायेंगे, और फिर किसी दिन तुम्हारे ऊपर पत्र लिख कर फेंकेंगे, जैसे कुसुम के ऊपर मनप्यारे ने लिख कर फेंका था—"मेरे दिल की रानी······!"

अनुराधा ने भवें सिकोड़ कर कहा—"चुप !"

पर तारा चुप न हुई, कहती गई,—'फिर तुम अपनी खिड़की हमेशा बन्द रखना, पत्र को भइया को दे देना और ख़ूब नाराज़ होना, कहना 'अब मैं स्कूल नहीं जाऊँगी'। भइया फिर तुम्हें समझावेंगे और उनको जाकर डाटेंगे—जैसे कुसुम के भइया ने किया था।''

अनुराधा ने मुँह घुमा लिया।

तारा ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"क्या करो तुम, इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है? यह सुन्दर सलोना-सा मुखड़ा······?"

अनुराधा नाराज़ हो गई। आँखें तरेर कर बोली—"तारा, बद-तमीज़ कहीं की! चुप रह बेवक़ूफ़ नहीं तो चाँटा धर दूँगी तेरे मुँह पर !"

इतने में मास्टरनी आ गईं।

तारा ने किताब खोलते-खोलते पूछा—"देखने में कैसे हैं? गोरे या तुम्हारी ही तरह साँवले?"

अनुराधा चुप रही। उसने कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

## ३

मन प्यारे की एक-एक बातें अनुराधा को याद जो हैं। कुसुम बेचारी की कितनी रुसवाई हुई थी। सब इसी तरह तो हुआ था। बेचारी कुसुम का क्या नहीं उड़ाया उसी मनप्यारे ने !

सोचकर अनुराधा काँप उठी !

पर उसका मन भीतर ही भीतर द्वन्द करने लगा—न, यह सब नहीं होने का, यह सब नहीं होगा। जाने क्यों अनुराधा को यह पूर्ण विश्वास है कि 'उस' से यह सब नहीं होने का। 'वह' ऐसा कदापि नहीं कर सकता। 'उसके' बारे में ऐसा सोचना भी पाप है। वह सज्जन जो है ! न कभी वह ज़रा भी छेड़खानी करेगा, न आवाजें कसेगा, न साइकिल लेकर गाड़ी का पीछा करेगा और न कभी कोई पत्र ही लिखेगा।

अनुराधा चारपाई पर लेटी-लेटी सोचती रही—सोचती रही। आज उसने खिड़की नहीं खोली, पढ़ा भी नहीं। माँ ने पूछा—"कैसा जी है अन्नी ?"

"सिर में पीर है।"—बस यही उसका संक्षिप्त-सा उत्तर था।

चारपाई पर करवट बदलते हुए अनुराधा ने फिर सोचा—वह खिड़की खोल कर इधर देखा करेगा ? वह बार-बार इधर देखेगा ? अब तक उसने जाना नहीं था; अब रोज़ देखा करेगा ?

तभी जाने किसने उसके मन के भीतर बैठ कर कहा—नहीं, वह भी नहीं हो सकता। यह भी नहीं होगा !······

······सचमुच ऐसा कभी भी नहीं हुआ। कभी वह खिड़की पर एक दफ़ा भी आकर खड़ा नहीं हुआ। उसने कभी किसी की ओर एक

बार भी नहीं ताका । चुपचाप सदा की भाँति वह आज भी सिर झुकाये बैठा पढ़ता रहा······खिड़की ज़रा-सी खोल कर अनुराधा ने देखा ।

अनुराधा को दुःख हुआ । वह क्यों नहीं इधर देखता । एक ही बार सही······। अनुराधा क्या चाहती है, वह किसी भी तरह नहीं बतला सकती ।

हलकी उदासी लिये दूसरे दिन जब वह क्लास में पहुँची तो तारा ने देखते ही पूछा—"क्यों, सुस्त कैसे हो ?"

"जी नहीं अच्छा है ।"

"चोर तो नहीं पकड़ा गया ?"—तारा ने कुछ सोच कर पूछा ।

अनुराधा के ओष्ठधरों पर एक पतली-सी मुस्कान की रेखा खिंच गई । फिर उसके मोती जैसे दाँत चमक उठे । मुँह में धोती का पल्ला दाँतों के बीच दबाते हुए कहा—"तुम्हें नाम मालूम है उनका ?"

"किनका ?—तारा ने अनजानी-सी बन कर कहा"

"अरे उन्हीं का ।"

"उन्हीं का, तुम्हारे प्रियतम का ?"

अनुराधा ने आँखें तरेर कर कहा—"फिर तुमने बदतमीज़ी की, अब चाँटा खा जाओगी तुम ।"—फिर ज़रा मुस्करा कर हँस दिया ।

"अच्छा बताओ अब कुछ नहीं कहेंगे ।"

"दूलहन ।"

"दूलहन क्या ?"

अनुराधा ने हँसते-हँसते कहा—"दूलहन नहीं तो और क्या । जैसे दूलहन सिर झुकाये रहती है, किसी की ओर नज़र ही नहीं उठाती, शरमाती रहती है सब से ।"

तारा हँस दी ।

वह भी हँस दी ।

दोनों हँस पड़ीं ।

फिर हँसी रोक कर तनिक गंभीर स्वर में तारा ने पूछा—"क्या अब

भी नहीं देखते ?"

अनुराधा ने आँख उठा कर कहा—"कहीं दुलहन भी किसी की ओर आँख उठा कर देखती है ?"

घंटा बजा, स्कूल की पढ़ाई होती रही। जब छुट्टी हुई और गाड़ी अनुराधा के द्वार पर आकर रुकी तो तारा भी अनुराधा के साथ ही उतर पड़ी।

"तुम क्यों उतर पड़ीं ?"—अनुराधा ने प्रश्न किया।

"कापी लेनी है साइन्स की, चलो भीतर।"—गंभीर मुद्रा में तारा ने उत्तर दिया।

दोनों खट्-खट् करती ऊपर चली गईं। कमरे की खिड़की बन्द थी। तारा ने खिड़की खोलते हुए कहा—"उफ़! कितनी गरमी है!" अनुराधा चुपचाप किताबें रखती रही आलमारी में। एक बार कनखियों से झाँक कर देखा—तारा खिड़की खोले खड़ी थी और टकटकी लगाये बड़े शान्त भाव से ताक रही थी उसी ओर। अनुराधा ने ध्यान-पूर्वक ताक कर देखा—खिड़की खुली है और 'वह' सामने सिर झुकाये कुछ बैठा लिख रहा है, किताबें खुली पड़ी हैं चार-पाँच। चुपचाप उधर से खिसक आई। तारा उधर ही खड़ी देखती रही। अनुराधा को जाने कैसा लगा। क्यों इस तरह देख रही है तारा ? अनुराधा दूसरी ओर देखती रही, सोचती रही।

माँ ने बुलाया—"अन्नी !"

"आई अम्मा।"—और भाग कर अनुराधा नीचे गई और एक तश्तरी में ले आई हलुवा। धीरे-धीरे, चुपके-चुपके वह कमरे के अन्दर आई—देखा—तारा अब भी उसी तरह उस खिड़की पर नज़र जमाये ताक रही है। चुपचाप मेज़ पर हलुवा लाकर रख दिया और तारा को पुकारा—"क्या जी नहीं भरा ?"

तारा ने अचकचा कर ताक दिया और अपने को सँभालते हुए बोली—"भर जायेगा जी तेरा घबरा नहीं, मैं कुछ न छीनूँगी।"

अनुराधा कट-सी गई ।

दोनों सखी नाश्ता करने लगीं । तारा ने खाते-खाते पूछा—"क्या सदा इसी तरह रहते हैं ? क्या इस ओर, तेरी ओर कभी नहीं देखा ?"

"न !"

"मेरी क़सम !"

"तेरी क़सम !"

हलुवा ख़तम करके तारा ने पानी पिया । पूरा गिलास एक ही बार खाली कर दिया । अनुराधा ने गिलास उठा कर सुराही से पानी लेना चाहा; पर तारा ने गिलास न लेने दिया, बोली—"रहने दे रानी, थक जायेगी तू, तो फिर तेरे प्रियतम नाराज़ जो होंगे मुझ पर !"

और खिलखिला कर हँस पड़ी । अनुराधा झेंप सी गई, बोली कुछ नहीं । तारा ने उठकर सुराही से पानी उँडेला और खिड़की पर जाकर पीने लगी । एक ही दफ़े में आधा गिलास खाली कर दिया और पानी पीते-पीते उस खिड़की की ओर देखा । अब वह अधिक नहीं देख सकी—खों-खों करके खाँसते-खाँसते बोली—"अनुराधा ! इधर आ, इधर-जल्दी !" अनुराधा मन्थरगति से खिड़की की ओर गई । तारा ने 'उस' खिड़की की ओर इशारा करते हुए अनुराधा को संकेत किया । अनुराधा ने देखा । तारा ठहाका मार कर हँस पड़ी ।

बात यह थी कि 'वह' बैठा 'शेव' कर रहा था और अपने मुँह में साबुन लगा रखा था । उसका साबुन देखकर तारा हँस दी थी । उसने किसी के ठहाका मारकर हँसने का शब्द सुना । सिर ऊपर उठा कर देखा······!

अनुराधा चुपचाप उसी ओर ताक रही थी और तारा हँस रही थी । 'उस' ने भी इन्हीं दोनों की ओर देखा न ! खूब अच्छी तरह से आज दिन के उजाले में दोनों की आँखें मिल गईं न ।

अनुराधा के गोरे सुन्दर मुख पर लाली दौड़ गई । एक क्षण भी

फिर वहाँ और नहीं खड़ी रह सकी। जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट गई हो। चुपचाप काँपते पैरों से एक ओर आकर खड़ी हो गई। उसका सारा शरीर काँप रहा था, श्वास तेज़ी से चल रही थी।

तभी तारा ने जल्दी से आकर हाथ पकड़ लिया और प्रेम से भरी आंखें उसकी आंखों में डाल कर कहा—"शरमा क्यों गईं, चलो न एक बार और।"

अनुराधा ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल अपनी बड़ी-बड़ी आंखें पृथ्वी में गड़ा लीं। उसके कानों तक लाली दौड़ गई और वह पृथ्वी ही की ओर ताकती रही।

नीचे छोटे भइया के बोलने की आवाज़ सुनाई पड़ी। दोनों सखी चुप हो गईं। तारा ने ऊपर ही से बुलाया—"भइया!"

"कौन, तारा!"···भइया ने स्वर पहचानते हुए उत्तर दिया।

"जी, मुझे घर पहुँचा दीजिए।"—तारा ने अनुरोध किया।

भइया राज़ी हो गये। तारा उनके साथ घर चली गई। चलती बेला उसने दोनों कर जोड़कर अनुराधा को नमस्ते किया और फिर भइया की ओर मुड़कर बोली—"भइया, तुम्हारे मुहल्ले में चोर बहुत आते हैं क्या, जो अनुराधा को सदा चोरों ही की चर्चा सुहाती है। अनुराधा का मुँह मारे लज्जा के लाल हो गया और तारा से मानो यह बात छिपी नहीं रही। उसने उसी प्रकार एक बार अनुराधा की ओर फिर देखकर नमस्ते किया और चली गई।

संध्या हुई। सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जाकर पहाड़ों की ओट छिप गये। धीरे-धीरे आकाश पर लाली फैल गई और फिर धीरे-धीरे वह लालिमा भी लुप्त हो गई। धीरे-धीरे आकाश में प्राची की ओर राकेश उदय हुआ, धीरे-धीरे उसकी मनोहर चन्द्रिका चारों ओर फैल गई। हौले-हौले पुरवा हवा बह रही थी। हौले-हौले चन्द्रिका बादलों से छन-छन कर बरस रही थी। हौले-हौले पेड़ों की डालें झूम रही थीं। हौले-हौले मौलसरी के फूल पृथ्वी पर बिखर रहे थे।

अनुराधा चुपचाप छत पर अकेली लेटी थी। चुपचाप चन्द्रमा के साथ डोल रही थी ! चन्द्र अभी प्राची से उदय हुआ है, अब ठीक मध्य में आ गया है। आकाश स्वच्छ है। यह "हन्ना-हन्नी" हैं, यह मंगल तारा है। यह इस ओर सप्तऋषी हैं। अनुराधा ने करवट बदली।......

वह भी कोई आदमी है ! जैसे किताबें ही उसकी सब कुछ हैं, पुस्तकों के अतिरिक्त उसे कुछ जानना ही नहीं, समझना ही नहीं...।

अनुराधा ने निरुत्तर हो फिर एक करवट बदली।......

नहीं-नहीं, वह कुछ नहीं सोचेगी। उसे सोचना ही न चाहिए। आखिर 'वह' उसका लगता ही कौन है......तकिया ज़रा ऊपर खींच कर दूसरी ओर देखने लगी—ओह ! कैसी उजियाली चारों ओर फैल रही है, जैसे चारों ओर चाँदी बरस रही हो। अनुराधा सोचने लगी।

मौन प्रकृति किसके मोम जैसे दिल में आग नहीं लगा सकती। प्रकृति के मौन सौन्दर्य पर, कौन होगा जिसने एक आह और एक विरह-गान गाकर अपने हृदय के टुकड़े न बखेर दिये हों ! अनुराधा का हृदय धड़क रहा था। उसकी धड़कन सब सुन सकते थे, सब समझ सकते थे।

गली के उस पार क़ाज़ी साहब का मकान है। बड़े पारसा आदमी हैं। उनको कबूतर पालने और चिड़ियों के जिलाने का बहुत ही शौक़ है। शाहजहाँपुर के कलसिरे कबूतर, बनारस के लक्के कबूतर उन्होंने मँगा रखे हैं। बदी की उड़ान में उनके कबूतर बड़ी दूर-दूर तक हो आये हैं। उनके पास एक जोड़ा कबूतर है। सारे कबूतरों में वही दोनों शुभ्र कबूतर सबसे अच्छे हैं।

मकान के ऊपर उन्होंने कबूतरों के बैठने के लिए एक सुन्दर-सी छतरी खड़ी कर रखी है।

अनुराधा ने करवट ली। उसकी नज़र जा पड़ी उसी छतरी पर। पवन धीरे-धीरे छतरी को हिला रहा था। दूध जैसी श्वेत चाँदनी चारों

ओर फैली थी। मुक्त आकाश के नीचे परों से पर लगाये, दोनों शुभ्र कबूतरों का जोड़ा बैठा था। पुरवैया बह रही थी। धीरे-धीरे छतरी झोंका ले रही थी। कभी कभी वह दोनों कबूतर अपने-अपने मन की बात अपनी चंचुका द्वारा एक दूसरे के हृदय में पहुँचा देते थे। अनुराधा एक-एक चीज़ों को अस्पष्ट रूप से देख सकती थी, देख रही थी। कबूतरों की 'गुटुर गूँ-गुटुर गूँ' भी उसे बखूबी सुनाई पड़ रही थी। अनुराधा देखती रही, सुनती रही।

सहसा अनुराधा को वीणा की स्पष्ट झङ्कार सुन पड़ी। थोड़ी देर तो वह चुपचाप सुनती रही, फिर सहसा उसका हृदय जैसे गा उठा—

पिया मिलन को जाना।
धीरे-धीरे, दबे-दबे, पाँव को उठाना ॥
पायल को बाँध के··············· ॥

अनुराधा ने करवट बदली।

---

## ४

घर में माँ हैं और दो भाई। दो भाइयों के बीच बस यही एक बहिन है। पिता नहीं हैं। बड़े भाई डाकखाने में पोस्टमास्टर हैं। वह विधुर हैं। सात साल हुए उनकी पत्नी का 'टाइफ़ाइड' से देहान्त हो गया। संतान उनके एक भी नहीं है। लोगों ने बहुतेरा कहा कि वह पुनर्विवाह कर लें; पर वह राज़ी न हुए। हर बार यही कह कर टाल दिया—"अब मैं क्या ब्याह करूँ, इन्द्र का ब्याह कर दूँ बस घर में बहू आ जाये। दो रोटी खाने को मिले यही मेरे लिए सबसे बड़ा सुख है।"

कहने का तात्पर्य यह है कि अम्मा को छोड़कर घर में दूसरी कोई बड़ी-बूढ़ी स्त्री नहीं है। ले-दे कर माँ-बेटी हैं, बस।

इम्तहान बीत चुका था। अनुराधा नवीं कक्षा पास कर अब दसवें में आ गई थी। गर्मियों की छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं। आषाढ़ का आरंभ था। दक्षिणी पवन बह रहा था। पास-पड़ोस में किसी की शादी थी। अम्मा दूल्हा देखने जा रही थीं। कहा अनुराधा से भी, पर अनुराधा तैयार ही न हुई, बात टाल दी कह कर—"अम्माँ तुम तो जानती ही हो कि इस साल बोर्ड का इम्तहान है, अगर अभी से मेहनत न करूँगी तो फिर पास हो चुकी।"

अम्मा अकेले ही चली गईं। जाते-जाते कह गईं—"शाम को भइया के लिए नाश्ता बना देना कुछ। मैं जा रही हूँ। रात में शायद न आ पाऊँ, तू खाना-वाना बना कर दोनों भइया को खिला-पिला देना, फिर पढ़ना-लिखना।"

अम्मा चली गईं।

भइया को खिला-पिला कर ऊपर जा सोई अनुराधा। उसे जैसे सचमुच ही पढ़ना-लिखना था, लेती गई किताब-कापियाँ ढेर-सी। थोड़ी देर तक तो बैठी देखती रही पन्नों को उलट-पुलट कर। सर-सर करती हवा बह रही थी। आज कैसी ठंडी हवा चल रही है। धीरे-धीरे आकाश मेघाच्छन्न हो गया। हलकी रोशनी चन्द्रमा की बादलों से छन-छन कर गिर रही थी।

टप, टप, टप। वर्षा होने लगी...

बिस्तर जल्दी-जल्दी समेट कर अनुराध कमरे के अन्दर आई। बिस्तर चारपाई पर बिछा दिया। अब सब खिड़की-दरवाजे जा खोले। बाहर पानी ज़ोरों से बरस रहा था। सड़क की बिजली की बत्ती का प्रकाश खिड़की पर पड़ रहा था। खिड़की बन्द थी। पानी की बूँदें खिड़की के काँच पर से बहती हुई नीचे गिर रही थीं—टप, टप, टप!

अनुराधा देखती रही चुपचाप उसी ओर।

कहाँ हैं वह? कहाँ चले गये?

एक-एक करके उसने अँगुली की पोरों पर गिना—तेरह दिन। पूरे तेरह दिन से वह नहीं देख पड़े।

अनुराधा का हृदय जाने कैसे-कैसे होने लगा। बेशरम-सी होकर उसने अपने मन के भीतर ही भीतर कहा, प्रश्न किया—कहाँ चले गये हैं वह ? जाने कब तक लौटेंगे ? भीतर ही भीतर उसकी आत्मा उससे द्वन्द करने लगी—तुम्हीं तो उनसे परदा करती थीं, उन्हें देख कर दूर हट जाया करती थीं ! इसमें उनका क्या दोष है ? उसकी आँखें सजल हो आईं—आँसुओं के मोती उसके कपोलों पर से लुढ़क-लुढ़क कर नीचे गिरने लगे···

इसी तरह वह चुपचाप बहुत देर तक आँसू बहाती रही। घड़ी ने दस बजाये। एक बार ऊपर सिर उठा कर फिर देखा—हाय, सामने की खिड़की बन्द है !

कहाँ चले गये हैं वह ? कब तक वापस आयेंगे ? कब तक 'वह' खिड़की ऐसे ही बन्द रहेगी ?

खट्, खट्, खट् करते हुए पड़ोस की सड़क से एक एक्का निकल गया। अनुराधा चौंक पड़ी—क्या आ गये ? पर एक्का रुका नहीं, चलता ही चला गया।

देखते-देखते अनुराधा सो गई।

दूसरे दिन शाम को अनुराधा ने छोटे भइया के सामने एक पत्र ला धरा, बोली—"भइया, आपका पत्र आया है।"

"कहाँ से ?"—खोलते-खोलते भइया ने पूछा।

अनुराधा चुपचाप खड़ी रही।

भइया मुस्करा-मुस्करा कर पढ़ने लगे।

अनुराधा ने पूछा—"किसका पत्र है भइया ? कहाँ से आया है ?"

"विकर्ण का।"

"कौन विकर्ण ?"

"अरे तू क्या जाने ? हमारी युनिवर्सिटी की नाक है। इस साल

दर्शन-शास्त्र में अन्वेषण का कार्य कर रहा है। आजकल पूना में है। इसी सप्ताह में आ रहा है। हमारे सामने ही वाले मकान में तो रहता है, बेचारा बहुत ग़रीब है !"

अनुराधा का मुख लज्जा से लाल हो गया और अधिक भइया के पास फिर नहीं खड़ी रह सकी। चुपचाप हट गई वहाँ से। मारे प्रसन्नता के उसका हृदय-कमल खिल उठा—इसी सप्ताह में आ रहे हैं वह ! कितनी बड़ी भूल हुई जो उनके आने की तारीख़ भी भइया से नहीं पूछी !

पाँच दिन और पाँच रात तक अनुराधा 'उन' की विकर्ण की बाट जोहती रही। कई बार उसने सोचा भी कि भइया से पूछे, कब आरहे हैं वह, पर वह पूछ न सकी।

पाँच दिन, पूरे पाँच दिन के बाद इन्द्र ने प्रातःकाल ही बिस्तर से उठते-उठते पुकारा—"अन्नी !"

अनुराधा ने उत्तर दिया—"क्या है भइया ?"

"यहाँ आओ।"

"अच्छा, आई भइया।" और चुपचाप अनुराधा जाकर इन्द्र के पास खड़ी हो गई।

"देखो अन्नी, आज विकर्ण आ रहा है, यहीं खाना खायेगा, खाना बनाने का सारा भार तुम्हीं पर है......।"

अन्नी का हृदय पुलकित हो उठा। पर अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए उसने बनावटी नाराज़गी दिखलाते हुए कहा—"मालूम नहीं किसको-किसको न्योता देते हो, जब देखो तब......!"

अनुराधा ने तरह-तरह के पकवान बनाये। बनाती क्यों न ? उसके भइया ने जो कहा था। अनुराधा का हृदय धक्-धक् कर रहा था। कब दस बजेगा, कब भइया उन्हें लेकर आयेंगे। गाड़ी तो नौ बज कर पचास पर ही आ जाती है। पन्द्रह मिनट हद से हद लगेंगे उन्हें यहाँ तक आने में। हिसाब जोड़कर निकाला उसने। अधिक से

अधिक दस बजकर पाँच मिनट पर उन्हें आजाना चाहिए। बैठी-बैठी अनुराधा सोचती रही। क्या बजा होगा ? जाने कब दस बजेंगे। धूप तो चढ़ आई है। अब तो दस बजना ही चाहिए। अब तो उन्हें आ ही जाना चाहिए।

खाना बनाने-खिलाने का उसे बचपन ही से शौक़ था। इस कार्य में उसका जी बहुत लगता था। जब कभी खाना बनाती, बड़े ही ढङ्ग से बनाती। अवसर विशेष पर तो वह खूब जी लगाकर बनाती। और फिर आज ? आज तो उसके 'वे' आने वाले थे। बहुत सुन्दर-सुन्दर पकवान उसने बनाये थे। बेसन के आम, मलाई के समोसे, केले की खीर······

कुछ सोचती-सोचती उठी, बोली—"अम्मा !"

"क्या है अन्नी ?"

"कुछ नहीं अम्मा, गुजराती इलायची लेना है।"

"अभी दिया बेटी।"—अम्मा ने उत्तर दिया।

"तुम रहने दो अम्मा, मैं ले लूँगी"—अन्नी का छोटा-सा उत्तर था। कहते-कहते अन्नी चली गई भण्डार गृह में। जाकर चुपके से देखा घड़ी की ओर ओह ! साढ़े दस हो रहे हैं।

उदास हो गई वह। जान पड़ता है अब वह न आवेंगे ! उदास मन-सी, धीरे-धीरे पुनः रसोई की ओर चली आ रही थी। सामने, बाहर का द्वार फटाक से खुला।

देखा अनुराधा ने, भइया हाथ में एक चमड़े का सूटकेस और एक फलों की डोलची लिये चले आ रहे हैं। अनुराधा अवाक् रह गई। उसे कुछ न सूझ पड़ा कि क्या कहे, क्या करे ?

भइया ने फलों की डोलची अन्नी को थमा दी। यंत्र चालित की तरह अन्नी ने डोलची ले ली और चुपचाप हृदय के अन्दर एक श्वाँस दबाकर अन्दर चली गई। भइया ने अपने मित्र की ओर लक्ष्य करके कहा—"आओ भाई, रुक क्यों गये ?"

विकर्ण पीछे-पीछे भइया के, ऊपर कमरे में चले गये। अनुराधा ने भी छिपकर देखा—वही सूरत, वही खादी का कुरता, वही धोती, वही चप्पल—वैसे ही नीची नज़र ! सब कुछ तो जैसे वैसा ही है,कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ।

विकर्ण ऊपर कपड़े-वपड़े उतारने लगा। भइया खट्-खट् करते नीचे उतर आये। नीचे आकर पूछा—"अभी कितनी देर है ?"

"कुछ भी नहीं भइया।"

"अच्छा"—कह कर भइया फिर ऊपर चले गये।

जाकर बोले विकर्ण से—"जनाब डाक्टर साहब जल्दी कीजिए, खाना तैयार हो गया है, बस केवल आपकी ही देर है।"

स्वाभाविक कोमलता से डाक्टर ने उत्तर दिया—"मेरी देर ! कदापि नहीं। यहाँ तो कोई भी विलम्ब नहीं है।"

"तो चलिए फिर स्नान कीजिए न ?"

"मैंने तो जबलपुर ही में नहा-धो लिया है।"

"तो मुँह-उँह कुछ धोइयेगा या यूँही।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

"तो चलिए—चलिए उठिये, जल्दी कीजिए। काफ़ी देर हो गई है। आध घंटा तो आज गाड़ी ही लेट आई है और आप भी लेट कर रहे हैं।" हाथ पकड़ कर विकर्ण का इन्द्र ने उठाया और ले गया स्नानगृह की ओर।

मुँह-हाथ धोकर विकर्ण और इन्द्र दोनों चौके में आ बैठे। अम्मा भी आकर पङ्खा झलने लगीं। अनुराधा ने थाली परोसना आरम्भ किया। विकर्ण ने सस्नेह स्वाभाविक स्वर में कहा—"अम्मा, मुझसे खाली तो बैठा नहीं जाता। थाली सामने न हो तो चौके में बैठना बहुत ही कष्टदायक मालूम होता है।"

इन्द्र भइया हँस पड़े, बोले कुछ नहीं।

अम्मा का हृदय वात्सल्य से भर उठा। उन्हें विकर्ण की स्वाभाविक और निष्कपट सत्यवादिता पर ममता हो आई। लगा जैसे विकर्ण उसी का अपना पुत्र है, उसी के गर्भ से हुआ है, नहीं तो कैसे इतना सत्य कहता। कुछ भी तक़ल्लुफ़ करता। बोली, बनावटी नाराज़गी दिखलाती हुई अनुराधा पर—"बिटिया तू तो जिस काम को करती है घंटों लगा देती है; जल्दी कर, भइया मेरा भूखा है।" फिर विकर्ण की ओर मुड़कर कहा—"आज कल की लड़कियाँ बस जहाँ पढ़ क्या गईं घर-गिरस्ती का सारा काम भूल जाती हैं; कर ही नहीं सकतीं।"

आज अनुराधा को तनिक भी बुरा नहीं लगा। वह तनमय होकर थाली परोसती रही।

थाली परोस लाकर दोनों जनों के सामने ला धरी। अब केवल खीर भर परोसना शेष रहा था। सो उसे भी वह कटोरे में परस रही थी। विकर्ण ने रोटी का कौर तोड़ते हुए कहा—"इन्द्र भाई, तू तो चाहे शुरू कर या न कर, पर मुझसे तो अब नहीं रहा जाता। मैं तो ले यह अब शुरू करता हूँ।"

अम्मा हँसने लगीं उसके सीधेपन पर; उसके निष्कपट वार्तालाप पर। अनुराधा ने खीर के दोनों कटोरे भी ला धरे भइया ही के आगे। भइया ने एक कटोरा खींच कर विकर्ण के आगे रखते हुए कहा—"हाँ-हाँ, तुम शुरू करो।"

अम्मा पंखा झल रही थीं। दोनों बैठे खा रहे थे। अनुराधा एक बार भी उस ओर नहीं देख सकी। चुपचाप सिर डाले-डाले रोटियाँ सेंकती रही।

भइया ने खाते-खाते कहा—"अनुराधा मेरी छोटी बहिन है। हाई स्कूल में है।"

विकर्ण ने कहा— बहुत प्रसन्न हुआ जान कर।

अनुराधा को कैसा लगा ?

कौन जाने उसके दिल का हाल ? उसका हृदय सागर जो है !

अम्मा ने कहा—"भइया, यह इन्द्र ही है जिसने मुझसे लड़-झगड़ कर, अपने बड़े भाई से लड़-झगड़ कर इसे पढ़ाया है। मैं तो चाहती थी कि बस रामायण भर पढ़ लेती, और आगे पढ़-लिख कर क्या करेगी। लड़कियों को अधिक पढ़ना-लिखना नहीं चाहिए। उन्हें तो घर-गिरस्ती का काम देखना चाहिए।"

विकर्ण ने स्वाभाविक सरलता से कहा—"नहीं अम्मा, पढ़ना-लिखना तो हर एक मनुष्य के लिए ही आवश्यक है; फिर चाहे वह पुरुष हो अथवा नारी।"

अम्मा चुप हो रहीं। अनुराधा को अच्छा लगा।

भइया ने कहा—"विकर्ण ! तुम तो जानते ही हो कि मुझे अधिक फ़ुरसत मिलती ही नहीं और फिर मैं अपना ही नहीं पढ़ पाता; इसे क्या पढ़ाऊँगा ? अपने ही आप पढ़ती-पढ़ाती रहती है।"—फिर ज़रा रुक कर कहा—"और एक बात यह है कि यह मुझसे इतनी ढीठ हो गई है दुलार पाकर, मेरा इसको पढ़ाना बिल्कुल ही असम्भव है।"

विकर्ण चुप रहा।

फिर खाते-खाते इन्द्र ने विकर्ण की थाली की ओर देख कर कहा—"अरे, आपने तो अभी तक कुछ खाया ही नहीं। यह खाइए, यह मलाई के समोसे—यह बेसन के आम !"

विकर्ण ने सिर डाले-डाले कहा—"खा रहा हूँ।"

अम्मा बोलीं—"भइया तेरा पेट क्या भरेगा ? कुछ बन नहीं सका। मेरा जी ही नहीं अच्छा है। इसी ने बनाया है। यूँ ही भूसा जैसा बना कर रख दिया है। मैं बनाती तो·········।"

विकर्ण ने बीच ही में कहा—"अम्मा, आज तक इतना स्वादिष्ट खाना मैंने कभी नहीं खाया। सच कहता हूँ, जीवन में पहली बार आज इतना स्वादिष्ट खाना खाया है। होटल का खाना तो आप

जानती ही हैं, दूसरे मैंने ख़ुद कभी खाने-पीने के मामले में ध्यान नहीं दिया है। किसी तरह पेट भर लेता हूँ।"

अम्मा बोलीं—"यह तुम्हारी भूल है भइया। खाने-पीने की तो यही उमर है। इन्द्र इतना बड़ा हो गया, मगर ज़रा भी भूख नहीं बरदाश्त कर सकता। जब कभी भूखा होता है तो कहता है आकर—'अम्मा पकौड़ी ही बना दो।' और फिर अभी न खाओगे तो क्या जब बूढ़े हो जाओगे तब खाओगे।"

विकर्ण हँस दिया।

अम्मा बोलीं—"अन्नी !"

अन्नी कुछ बोली नहीं।

अम्मा ने फिर कहा—"बेटी, दो मलाई के समोसे दे जा।"

अनुराधा चुपचाप थाली में दो समोसे रख गई।

भइया ने कुछ नहीं लिया। खाना खाकर दोनों जने ऊपर कमरे में सोने चले गये। शायद कुछ क्षण तक बात करते-करते वे लोग सो रहे। अनुराधा भी खाना खा-पीकर नीचे ही तनिक लेट रही। बड़ी देर तक पड़ी-पड़ी लेटी रही। पलक बन्द किये लेटी थी; जब बहुत देर तक नींद न आई तो फिर पलक खोल दी।

—— ——

## ५

बनारस में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होने वाला था। उसी में विकर्ण निमंत्रित हुआ था। तो उसी में जाने की तैयारी हो रही थी। कल जाना है। उसके लिए पूना में रहकर उसने एक निबंध भी लिखा है। इन्द्र भी साथ जाने की तैयारी कर रहा है। आख़िर सन्ध्या की गाड़ी से दोनों जने रवाना हो गये।

साहित्य-सम्मेलन में विकर्ण का निबंध पेश हुआ। समाज का

जैसा वैज्ञानिक विश्लेषण उसने किया, आज तक किसी ने भी वैसा नहीं किया था। सभी लोगों ने उसकी क़लम का लोहा मान लिया। इन्द्र तो फूला न समाया। सम्मेलन से दोनों जब लौट कर होटल में आ उपस्थित हुए तो इन्द्र ने विकर्ण को छाती से चिपटाते हुए कहा—"विकर्ण, सचमुच तुम मनुष्य नहीं हो; तुम देवता हो। समाज के प्रति तुम्हारे हृदय में इतना दर्द है, इतनी कसक है। आज जिस दृष्टि से तुमने समाज का विश्लेषण किया है, वैसा अभी तक किसी ने भी कभी नहीं किया।"

विकर्ण चुप रहा।

खाना खाने के बाद दोनों फिर इलाहाबाद वापस आ गये। प्रयाग पहुँच कर इन्द्र ने सारी बातें अम्मा से कहीं; अम्मा सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुईं। कहने लगीं—"बड़ा भोला है बेटा। जैसे कुछ जानता ही नहीं।"—फिर जरा रुक कर बोलीं—"अपनी ही बिरादरी तो है। माँ-बाप कोई नहीं है। कोई भी इस संसार में उसको सहारा देने वाला नहीं है, फिर भी बेचारे ने इतना पढ़ा है। इतना उसे पढ़ने का शौक़ है। देख लेना, इन्द्र, एक न एक दिन यह बहुत बड़ा आदमी होगा।"

इन्द्र की आँखों में आँसू भर आये, बोला—"हाँ अम्मा, इसमें भी क्या कोई संदेह है।"

अम्मा ने मन ही मन क्या सोचा जिससे उनके मुख पर कितने ही तरह के भाव बने-बिगड़े। लेकिन, उन्होंने इन्द्र से उस समय कुछ कहा नहीं।

घर के सभी लोगों ने सुना। बड़े भइया ने सुना। अनुराधा ने सुना। बड़े भइया तो सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और यह जानकर कि वह अपनी ही बिरादरी है, उनकी खुशी का कोई पारावार ही नहीं रहा।

कौन जाने अनुराधा को भी कोई प्रसन्नता हुई या नहीं ? कैसे जाना जा सकता है उसके हृदय का हाल, उसका हृदय सागर जो है !

इस बात को पूरे सात दिन बीत गये। अनुराधा का स्कूल खुल गया है आज। आज वह स्कूल गई है। अम्मा ही ने आज खाना बनाया-खिलाया है। बड़े भइया और इन्द्र बैठे खाना खा रहे थे। अम्मा चौके में बैठी खाना खिला रही थीं। अम्मा ने बात शुरू की—"बेकार ही इस साल अन्नी को पढ़ा रहे हो। मेरी तो राय है कि उसका अब व्याह कर दो। अगर विकर्ण तैयार हो जाय!"

बड़े भइया ने कहा—"बात तो ठीक है अम्मा, मगर विकर्ण से कैसे बात छेड़ी जाय? हाँ, इन्द्र अगर उसका मन ले तो पता चले।"

अम्मा ने उत्साहित होकर कहा—"अनुराधा को भी तो उसने देखा ही है।"

इन्द्र ने कहा—"अम्मा, इस साल और पढ़ लेने दो बेचारी को। उसका आखिरी साल है। और विकर्ण का भी यही अंतिम साल है। हमें अपने स्वार्थ के लिए बेचारे की जिन्दगी बर्बाद नहीं करनी चाहिए। इस साल वह अपने को किसी भी झञ्झट में फँसाना न चाहेगा।"

अम्मा चुप हो गईं।

बड़े भइया बहुत ही गंभीर स्वाभाव के हैं। एक बार जो तै कर लेते हैं फिर उससे जौ भर भी नहीं टलते। उन्होंने भी इन्द्र की राय का पूर्ण रूप से समर्थन किया। बोले—"तुम ठीक कहते हो इन्द्र; मगर उसके हृदय का हाल जानना तो ठीक ही है। अगर वह तैयार हो जाय तो फिर उससे बढ़कर क्या बात हो सकती है।"

इन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

खाना खा-पीकर दोनों भाई उठ गये।

इधर अनुराधा जैसे ही स्कूल में पहुँची, नवतारा से जा मिली। नवतारा उसकी बाट जोह रही थी। खाते-पीते, स्कूल की गाड़ी में, रास्ते भर दोनों सखियों को एक दूसरे से मिलने की बेचैनी सताती रही। जब मिलीं तो दोनों की दोनों मुस्करा पड़ीं। फिर एक दूसरे से यूँही हाथ उठा कर नमस्ते किया।

और नवतारा हाथ पकड़ कर अनुराधा को ले गई 'लान' में। फिर पूछा उससे मुस्करा कर—"कहो कैसी कटी छुट्टियों में ?"

"तुम अपनी कहो।"

"कहाँ चले गये थे ?"

"कौन कहाँ गये थे ?"

"अरे मुझे सब मालूम है। विकर्ण ! और कौन ? जिनके लिए मलाई के समोसे बनाये थे।"

"तुझ से छोटे भइया ने सब कहा होगा।"

"वह मुझ से क्यों कहने लगे; वह मेरे कौन हैं ?"

"वह तेरे कौन हैं; अरे मैं सब जानती हूँ।"—फिर ज़रा रुक कर घबरा कर पूछा—"क्यों तारा, क्या तुम ने छोटे भइया से सब हाल बतला दिया है ?"

"हाँ !"—मुँह बना कर नवतारा बोली।

"तुम्हें मेरी क़सम तारा सच बतला दो।"

"अरे पगली है क्या, भइया ही तेरे ब्याह की बात सोच रहे थे, उन्होंने ही प्रस्ताव किया है मुझसे तेरे दिल का हाल जानने का। बोल, मिठाई खिलाती है कि नहीं।"

अनुराधा लजा-सी गई।

इतने ही में स्कूल का घंटा बज गया। लड़कियाँ 'क्लास' की ओर जाने लगीं। अनुराधा और नवतारा भी दर्जे की ओर चल पड़ीं। मिठाई की बात वहीं रह गई"।

तब नवतारा ने एक कापी खींचकर अनुराधा की उस कापी पर लिख दिया —"बहुत दुःख लग रहा है, क्यों ?"

अनुराधा ने लिख दिया—"हाँ।"

"अब समय काटे नहीं कटता ?"

"हाँ।"

"रात-रात भर जागती रहती हो ?"

"हाँ।"

"सारी रात तारे गिन कर काट देती हो ?"

"हाँ।"

"खिड़की की ओर देखती रहती हो ?"

"हाँ।"

"किसी काम में जी नहीं लगता ?"

"न !"

"संसार से विरक्ति हो गई है आजकल ?"

"हाँ !"

"किसी से बोलना-बतलाना अच्छा नहीं लगता ?"

"न !"

"तो इसका इलाज चाहती हो ? चाहती हो इसे दूर करना ?"

"हाँ !"

"तो जो कहूँगी वह करोगी ?"

"हाँ !"

"बड़े कष्ट सहने पड़ेंगे !"

"कोई चिन्ता नहीं !"

"सोच लो !"

"सोच लिया। अब इस तरह नहीं घुल-घुलकर मरा जाता।"

"अच्छा ! जमना का पुल देखा है ?"

"हाँ !"

"तो फिर उसी से कूदकर पानी में डूब मरो।"—लिखा और ठठा कर हँस पड़ी।

अनुराधा अवाक् देखती रही उसी की ओर। मुस्कराई भी नहीं ज़रा-सा। नवतारा का ठहाका सुनकर मास्टरनी चौंक पड़ी, बोलीं अनुराधा को लक्षित करके—"क्या कर रही हो अनुराधा ?"

"जी आमर......"

"लाओ देखें !"—मास्टरनी ने कहा ।

अनुराधा का मुँह उतर गया । नवतारा कापी लेकर उठी; पर ठीक उसी समय हेड-मिस्ट्रेस आ गईं क्लास में । नवतारा बैठ गई । झट से कापी बदल दी दूसरी, और रख दी खोलकर उसे । हेड-मिस्ट्रेस चली गईं तो अनुराधा ने कापी लेजा धरी मास्टरनी के पास । मास्टरनी देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं ।

छुट्टी हुई । लड़कियाँ गाड़ी पर बैठ-बैठ कर घर को चलने के लिए प्रस्तुत हुईं । अनुराधा और नवतारा भी आ बैठीं गाड़ी में । गाड़ी चली घर की ओर । अनुराधा को छेड़ते हुए नवतारा बोली—"उस दिन तो रात में फिर खूब ही पढ़ाई हुई होगी । और कल ? सारे दिन सुबह से शाम तक पढ़ती रही होगी ?

अनुराधा कुछ नहीं बोली ।

नवतारा चिढ़-सी गई । झुंझला कर कहा—"देखो यही अच्छा नहीं लगता, बोलती क्यों नहीं हो ?"

"क्या ?"

नवतारा मुस्करा दी । बोली—"उन्होंने तुम्हारी ओर तब से क्या एक बार भी नहीं देखा ?"

अनुराधा ने धीरे से कहा—"देखा है ।"

"कब ?"

"परसों !"

"नवतारा ने अनुराधा की आँखों में अपनी आँखें डालकर कहा"

"सच !"

"सच !"—धीरे से अनुराधा बोली ।

"कितनी बार ?"

"गिना नहीं ।"

"कल गिनकर बताना ।"

"अच्छा ।"

और तब दोनों सखी मुस्करा पड़ीं ।

अनुराधा का घर आ गया और वह उतर पड़ी । नवतारा ने पुनः स्मरण दिलाते हुए कहा—"कल ज़रूर !"

"अच्छा !"—कह कर अनुराधा जल्दी से भाग गई । बात असली यह थी कि ऊपर खिड़की पर विकर्ण बैठा था और अनुराधा की उसकी नज़र चार हो गई थी ।

असंख्य कोसों तक नीले आसमान के नीचे लेटी अनुराधा चुपचाप झिलमिलाते तारों की ओर देख रही थी । अपनी छाती के भीतर एक पीर छिपाये चुपचाप कुछ सोच रही थी । मन ही मन चञ्चल हो उठा था । मारे व्यथा के उसे बेचैनी हो रही थी । मन ही मन उसने एक ठंढी आह भर कर कहा—वह मेरे कौन लगते हैं ? मुझसे उनसे कोई नाता-रिश्ता नहीं, जान पहिचान नहीं, बोल-चाल नहीं । जो अपना कोई नहीं, उसके लिए मैं क्यों विकल हो रही हूँ । नहीं-नहीं, मुझे ऐसा न करना चाहिए । वह मेरे कौन लगते हैं ? कोई नहीं, उनसे मुझसे क्या सम्बन्ध ?

बहुत दिनों तक ऐसा ही सोच-विचार चलता रहा । रोज़-रोज़, हर रोज़ नवतारा पूछती, हर रोज़ अनुराधा कुछ न कुछ उत्तर दे देती । घर में अकेले में बैठकर रोज़ अपने 'उनकी' याद करके दो आँसू बहा लेती ।

एक दिन सितम्बर के महीने में स्कूल की एक मोटी मास्टरनी मर गई । स्कूल में छुट्टी हो गई । सात-आठ लड़कियों को नवतारा ले गई अपने घर । अनुराधा भी गई थी । घर आकर नवतारा ने सब को दावत दी । हलका गुलाबी जाड़ा पड़ना शुरू हुआ था । राय हुई सबकी कि चाय बननी चाहिए ! चाय बनना आरम्भ हुआ ।

चाय की प्याली ख़त्म करते हुए नवतारा ने अपने मुँह में एक लड्डू ठूंसते हुए कहा —"प्यारी बहिनों, मोटी गुरूजी के मरने के शोक में आप लोगों को जो यह दावत दी गई है......"

सब लड़कियाँ ठहाका मार कर हँस पड़ीं। अनुराधा ने चाय की प्याली मेज़ पर रखते हुए कहा—"इस तारा का मुँह न देखूँगी नहीं तो हँसते-हँसते पेट फूल जायगा।"—और ठठा कर हँस पड़ी। नवतारा बोली—"बचपन में किसी मोटी के मरने की हमेशा ही सोचा करती थी, सोचती थी—"मोटी मरे मलीदा होय, सब लड़कियों का न्योता होय"—और मुँह फुलाकर, बड़ी-बड़ी आँख निकाल कर कुहनियों पर हाथ टेक कर गम्भीर मुद्रा बनाकर बैठी रही। कुछ क्षण पश्चात् एक आँख ज़रा दबाकर अनुराधा की ओर देखकर बोली—"और बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद ही आज यह साध पूरी होने की नौबत आई है। आप लोग उसी की ख़ुशी में यह प्रीतिभोज उड़ा रही हैं।"

सब लड़कियाँ ख़ूब ही हँसीं। हँसते-हँसते सबका पेट फूल गया। अगर कोई हँसी नहीं तो वह थी नवतारा।

अनुराधा का हँसते-हँसते बुरा हाल हो गया। वह उधर मुँह फेर कर बैठ गई, बोली—"अब नहीं देखेंगे उस ओर—नवतारा की ओर—नहीं तो फिर हँसी आ जायगी।

हँसी का तूफ़ान कम हुआ। 'टी-पार्टी' समाप्त हुई। सुशीला ने चुपके से एक समोसा निकाल कर मेज पर ला धरा और बोली—"यह पुरस्कार उसको दिया जायेगा जो एक सुन्दर-सा गीत सुनायेगी।"

सबों ने इस प्रस्ताव की ताईद की।

तै हो गया कि अब गाने-बजाने का प्रोग्राम आरम्भ होना चाहिये।

नवतारा बोली —"नहीं, यह सब नहीं। गाना मैं दूँगी, जो इसे निकाल दे पुरस्कार उसको मिले।"

यही तै पाया।

नवतारा एक काग़ज़ पर लिखी हुई एक कविता ले आई। कविता थी 'परिचय'। अनुराधा ने उसका स्वर निकाल कर गाया। सुनने वाली सभी सहछात्री मुग्ध हो गईं। सबों ने एक स्वर से अनुराधा के गायन विद्या की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। यही तै पाया कि पुरस्कार अनुराधा को ही मिले; क्योंकि फिर किसी ने गाने का साहस नहीं किया।

नवतारा ने समोसा उठाकर अनुराधा के मुँह में ठूँसते हुए कहा—"लो रानी, अब क्या है, अब तो तुम्हारे प्रियतम तुम्हारे ऊपर बलि-बलि जायेंगे।"

अनुराधा झेंप सी गई। पर बात बनाते हुए बोली—"तो तुम्हें क्यों ईर्षा हो रही है?"

नवतारा ने कविता की प्रशंसा करते हुए कहा—"बहिनो, क्या आप में से कोई इस कविता के रचयिता के मनोभावों का विश्लेषण कर सकती हैं?"

सबों ने एक कण्ठ से उत्तर दिया—"हम सब की प्रतिनिधि हैं अनुराधा, वही हम सब की ओर से कुछ कहेंगी।"

"यह काम मेरे बूते का नहीं है; किसी कवि की एक रचना पढ़कर हम उसके मनोभावों को जान लें!"

नवतारा ने कहा—"अरे रानी, तुम न जानोगी तो क्या मैं जानूँगी?"—और झट से ड्राअर से एक मासिक पत्रिका निकाल कर बोली—"आप लोगों को आश्चर्य होगा कि इस 'परिचय' के रचयिता हैं 'श्री विकर्ण जी'।"—और पत्रिका का पृष्ठ जिस पर वह कविता और विकर्ण का चित्र छपा था; खोलकर सब की ओर कर दिया।

अनुराधा ने धड़कते हुए हृदय से एक बार पत्रिका की ओर दृष्टि घुमाई और फिर तुरन्त झुका ली। मारे लज्जा के उसके कपोल लाल हो गये। नवतारा अब भी चुप नहीं हुई, कहती गई—"और श्री विकर्ण जी हैं अनुराधा के आराध्य देवता; भावी पति।"

सब एक स्वर से चिल्ला पड़ीं—"मुबारक, मुबारक।

अनुराधा झेंप-सी गई। बोली कुछ नहीं। आज नवतारा ने उसका गहरा मज़ाक़ उड़ाया, पर वह ज़रा भी रुष्ट नहीं हुई। क्यों ?

रह-रह कर उसको विकर्ण की विद्वता पर हर्ष हो रहा था। ओह, विकर्ण इतना विद्वान् है !

शाम को जब सब लड़कियाँ विदा होने लगीं तो नवतारा ने अनुराधा को पकड़कर छाती से लगा लिया और बोली—"क्या नाराज़ हो गई हो रानी ?"

स्वाभाविक कोमल स्वर में उत्तर दिया—"न !"

तारा प्रसन्न हो उठी, बोली—"अन्नी, आज चलेंगे नुमाइश देखने। तैयार रहना, मैं आऊँगी।"

"अच्छा !"

"ज़रूर !"

"हाँ, ज़रूर !"

अनुराधा चलने को प्रस्तुत हुई। ताँगे पर सब लड़कियाँ जा कर बैठ गईं। अनुराधा भी। ताँगा धीरे-धीरे चला। तभी दोनों कर जोड़कर नवतारा बोली—"कवियत्री जी, नमस्ते !"—और मुस्करा दी।

ताँगा चल पड़ा तेज़ी से।

रात को लगभग सात बजे नवतारा और नलिनी आ उपस्थित हुईं। छोटे भइया भी नुमाइश जाने वाले थे। और उन्होंने अनुराधा से कहा भी था कि 'अन्नी' आज नुमाइश देखने चलना।' पर जब उन्होंने नवतारा को देखा तो बोले—"जाओ अन्नी नवतारा के साथ, यह लोग भी आई हैं। मैं अकेले ही जाऊँगा।"

अनुराधा तैयार हो गई।

अनुराधा, नवतारा और नलिनी ताँगे पर बैठ कर नुमाइश में पहुँचीं। वहाँ और भी स्कूल की सहेलियाँ आई थीं। सभी लड़कियाँ बड़ी स्वतन्त्रता के साथ नुमाइश की सैर कर रही थीं। घूमते-घूमते नौ

बजा दिये । नौ बजे आतिशबाज़ी छूटने का प्रोग्राम था । सारी भीड़, सारा जन-समूह उसी ओर भागा जा रहा था । लोग बड़ी फुर्ती से उसी ओर बढ़े चले जा रहे थे । नवतारा इत्यादि भी उसी ओर जा रही थीं । लाउड-स्पीकर पर किसी का गाना हो रहा था:—

"सइयाँ मँगा दो मुझे खादी की चुंदरिया ।"

भार्गव के ज़ीरा-जल की दूकान के पास मोड़ पर नवतारा अपनी सहेलियों के साथ-साथ बातें करती चली जा रही थी । सामने से एक ईसाई-महिला बड़ी बनी-ठनी चली आ रही थी । रङ्ग उसका बिल्कुल श्याम था । उम्र खिसक चली थी, फिर भी सौन्दर्य और यौवन के तक़ाज़े के लाज से वह अपने-आप को बड़े ही भड़कीले वस्त्रों से सजाये थी । मुँह पर पाउडर भी पोत रखा था । नवतारा ने साथ की लड़कियों से उसी ईसाई-महिला की ओर लक्ष्य करके कहा—"देखो, रास्ता ख़ाली कर दो; चाची जी आ रही हैं ।"

लड़कियाँ हँस पड़ीं ।

"चाची जी नमस्ते !"—दोनों कर जोड़कर और उसी ईसाई-महिला की ओर लक्ष्य करके नवतारा बोली ।

चाची जी लाल-लाल आँखें निकाल कर उसे घूरती हुई आगे बढ़ गईं । सभी लड़कियाँ हँस पड़ीं । अनुराधा ख़ूब ज़ोर से हँस रही थी । हँसते-हँसते बोली—"बड़ी दुष्ट है तू नवतारा, नाहक बेचारी को इतना बनाया ।"

तभी पीछे से किसी ने महीन-सी पतली आवाज़ में धीरे से कहा—"ज़रा हट जाइए ।"

घूम कर अनुराधा ने देखा । वह कट-सी गई । झट से एक तरफ़ खिसक कर खड़ी हो गई, एक दूसरी लड़की के पीछे । वह सज्जन चले गये ।

अनुराधा-ने कुछ देर बाद नवतारा से अकेले में पूछा—"क्या सोचा होगा उन्होंने ? क्या कहा होगा अपने मन में ?"

नवतारा चुप रही। आज कुछ नहीं बोली।

---

## ६

इन्द्र ने कहा—"अम्मा, अनुराधा का यह आखिरी साल है। देखता हूँ कि यह पढ़ने-लिखने में अच्छी नहीं है। अगर इसका यही हाल रहा तो फिर पास हो चुकी।"

अम्मा चुप रहीं।

इन्द्र कहता ही गया—"सोचता हूँ अम्मा कि अन्नी के लिए एक ट्युटर रख दूँ जो इसे घर पर थोड़ा पढ़ा दिया करे।

"क्या, मास्टर ?"—अम्मा ने प्रश्न किया।

"हाँ अम्मा, सोचता हूँ कि विकर्ण ही से कह दूँ वह आकर पढ़ा दिया करे। हर्ज ही क्या है। विकर्ण बड़ा सचरित्र लड़का है अम्मा।"

"हाँ-हाँ, बेटा इसमें क्या हर्ज है, पर जब वह तैयार हो तब न। वह क्यों पढ़ाने लगा बेटा।"

"तुम यह सब बात छोड़ो अम्मा। उसको तैयार करना तो मेरा काम है। मैं जो कहूँगा वह उसे कभी नहीं टालेगा।"

"बड़ा अच्छा है बेटा, अगर वह तैयार हो जाय।"

इतने में अनुराधा आ उपस्थित हुई माँ के पास। इन्द्र ने प्रश्न किया—"अन्नी, तुम्हारी कौन-सी चीज़ कमज़ोर है ?"

अन्नी चुप रही।

"अङ्गरेज़ी ?"

"नहीं !"

"हिसाब ?"

"नहीं ।"

"हिन्दी ?"

"नहीं ।"

"हिस्ट्री ?"

"जी ।"

"साइंस ।"

"नहीं ।"

"आज से तुम्हें मास्टर साहब आकर पढ़ायेंगे । मैंने उनसे कह दिया है । वह तुम्हें सभी विषय पढ़ायेंगे ।"

अनुराधा ने कुछ भी नहीं पूछा—कौन मास्टर हैं, कैसे मास्टर हैं ? उसकी जैसे प्रतिवाद करने की कुछ प्रकृति ही नहीं है । आज तक उसने कभी भी जीवन में किसी भी चीज़ का प्रतिवाद नहीं किया । उसके लिए प्रतिवाद जैसे महान् पाप है !

सन्ध्या को मास्टर साहब आ उपस्थित हुए । अनुराधा ने उन्हें देखा तो धक् से रह गई । काँपते पैरों से आकर चौकी पर एक ओर आँखें नीची किये बैठ गई ।

"क्या पढ़ोगी ?"—मास्टर साहब ने पूछा ।

"जी, हिस्ट्री ।"

"अच्छा, निकालो कौन-सा इतिहास पढ़ना है ? भारतीय या ब्रिटिश ?"

"ब्रिटिश !"—काँपती-सी महीन आवाज़ में उत्तर दिया ।

विकर्ण ने पढ़ाना आरम्भ किया । अनुराधा चुपचाप बैठी देखती रही चौकी की ओर । एक बार भी उसने ऊपर नज़र नहीं उठाई । एक बार भी उसने विकर्ण की आँखों में नहीं देखा । एक बार भी विकर्ण ने उसकी ओर नहीं ताका ।

पढ़ाना समाप्त कर विकर्ण जब चलने लगा तो इन्द्र ने उसे अपने

कमरे में बुला लिया। जाकर इन्द्र के पास बैठ गया। माँ दो गिलास दूध और हलुवा बनाकर ले आईं।

इन्द्र ने कहा—"लीजिए महाशय, ग्रहण कीजिए।"

विकर्ण ने खाना आरम्भ किया। माँ चुपचाप बैठी उन्हीं दोनों की ओर देखती रही।

रोज़-रोज़ ऐसा ही क्रम चलता रहा। रोज़-रोज़ विकर्ण पढ़ाने आता रोज़-रोज़ माँ उसे नाश्ता बनाकर खिलाती। विकर्ण उसे अम्मा कहकर सम्बोधित करता, अम्मा उसे बेटा कह कर बुलाती।

माँ-बेटे का यह सम्बन्ध बहुत दिनों तक चलता रहा।

अनुराधा का क्या हुआ ? कुछ मालूम नहीं, पर पूरा एक महीना बीत गया और उसने एक दिन भी मास्टर की आँखों में अपना प्रतिविम्ब देखने की चेष्टा नहीं की, उसका प्रयास नहीं किया।

एक दिन इतवार को विकर्ण का खाना भी यहीं बना था। शनीचर के ही दिन अम्मा ने कह दिया था विकर्ण से—"बेटा, कल दोपहर को यहीं खाना।"

विकर्ण ने उत्तर दिया—"अच्छा !"

सो विकर्ण और इन्द्र दोनों बैठे खाना खा रहे थे। अम्मा ही ने आज अपने हाथ से खाना बनाया था। और अम्मा ही परोस-परोस कर खिला रही थीं। अम्मा ने पूछा—"बेटा, तुम खाना कहाँ खाते हो ?"

"होटल में।"

"किस होटल में ?"

"अन्नपूर्णा।"

"नहीं बेटा, यह नहीं होने का। आज से दोनों समय तुमको यहीं खाना होगा। अब आज से तुम होटल में खाना न खा सकोगे।"

"अम्मा, आपको मेरे लिए नाहक ही कष्ट होगा।"

"सो क्या तुम और इन्द्र मेरे लिए दो हो ?"

बिकर्ण चुप रहा ।

अम्मा कहती गईं—"देखो आज से अब तुम और दूसरी जगह, होटल में खाना न खा सकोगे ।"

"पर अम्मा, अभी तो मेरे रुपये वहाँ बाक़ी हैं ।"

"बाक़ी रहने दो । रुपये तुम्हारी जान से बढ़कर तो नहीं हैं; तुम्हारे स्वास्थ्य से तो ज़्यादा नहीं हैं । होटल का खाना !......।"

माँ की आँखों में आँसू भर आये । रुँधे गले से कहा—"कुछ भी हो, होटल में तुम्हें नहीं जाने दूँगी । होटल के नौकरों-चाकरों में तो रुपये का लोभ होता है । वह क्या जानें कि भोजन खिलाने में स्नेह और ममता की बहुत अधिक आवश्यकता है । अगर तुम्हारी अपनी माँ ज़िन्दा होती तो क्या वह यह गवारा कर सकती थी कि तुम होटल का अन्न खाकर अपना स्वास्थ्य नष्ट करो ।"

विकर्ण चुप रहा । केवल एक ठण्डी साँस अपनी छाती के भीतर दबा ली ।

अम्मा ने प्रश्न किया—"तुम्हारी माँ का कब देहान्त हुआ है बेटा ?"

"मैं जब डेढ़ साल का था ।"

"तुम्हें उनकी कोई याद नहीं ?"

"एक धुंधली छाया मात्र है ।"

"और पिता का कब देहावसान हुआ ?"

"उनसे भी पहले......।"

विकर्ण की आँखें छलछला आईं । आज जीवन में पहली बार एक नारी का स्नेह-प्यार, एक माता का आदर-सत्कार पाकर उसका हृदय भर आया; आँखें छलछला आईं । उसने भर्राये कण्ठ से कहा—"अम्मा !"

"हाँ बेटा !"

"......सारा जीवन मेरा, एक दुःख की लम्बी गाथा है। आज तक मैंने किसी की भी मीठी बोली अपने विषय में नहीं सुनी। दर-दर ठोकरें खाता फिरा हूँ......कोई मुझे अपना पुत्र नहीं समझ सका, नहीं बना सका। इस जीवन में पहली बार मैंने तुम्हारा प्यार पाया है—एक माँ का प्यार......।"

अनुराधा पड़ोस की कोठरी में बैठी सुनती रही। वह और अधिक नहीं सुन सकी। उसका धैर्य खो गया। टप्! टप्!! टप्!!! कर के आँसू उसके नेत्रों से लुढ़क पड़े।

इन्द्र ने कहा—"विकर्ण आज से तुम वहाँ उस घर में नहीं रह सकते, तुमको यहीं रहना होगा।"—फिर अम्मा की ओर सङ्केत कर कहा—"क्यों न अम्मा ?"

"हाँ !"

"ऊपर का कमरा खाली करवा दो अम्मा। अन्नी नीचे रहेगी।"

विकर्ण चुप रहा।

इन्द्र ने कहा—"मैं कहता न था अम्मा कि विकर्ण बहुत ही सीधा है, एकदम गऊ—निरा बालक ही समझो उसे।"

विकर्ण हँस दिया। अम्मा भी हँस पड़ी।

उसी दिन विकर्ण का सारा सामान सारी ढेर सी किताबें, ट्रंक इत्यादि सभी कुछ इन्द्र ने लाकर ऊपर के कमरे में रखवा दिया। वहीं विकर्ण का डेरा पड़ गया। सब कुछ हो गया। किसी को भी कोई असुविधा नहीं हुई, नहीं जान पड़ती थी, यदि किसी को कुछ भी असुविधा थी तो केवल दो ही प्राणियों को—विकर्ण को और अनुराधा को।

पर इसे कौन जानता था। इसे तो केवल वे ही दोनों जानते थे। दोनों एक दूसरे के सामने पड़ने से लजाते। माँ चुपके-चुपके यह सब देखती रहीं बहुत दिनों तक। एक दिन योंही अपने मन का बोझ हलका करने के लिए इन्द्र से कहा—"निरा बालक समझो इसको बेटा !"

इन्द्र अपने मित्र के इस गुण और स्वभाव पर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा, बोला कुछ नहीं, केवल मुस्करा भर दिया।

अब बड़े क्रम से अनुराधा की पढ़ाई चलने लगी। रोज़ शाम के सात बजे वह ऊपर विकर्ण के कमरे में पढ़ने जाती। रोज़ एक घण्टा ऊपर रहकर पढ़ती। जब तक अनुराधा ऊपर पढ़ती रहती, कोई भी भूलकर ऊपर न जाता, अम्मा भी नाश्ता के बहाने न जातीं। अनुराधा शान्त भाव से आँखें नीचे झुकाये सबक़ पढ़ती, विकर्ण गंभीर भाव से उसे पढ़ा देता। पढ़ने के अतिरिक्त उन दोनों में कभी कोई बात नहीं हुई, कभी कोई चर्चा भी नहीं चली।

पढ़ाई इसी तरह होती रही। विकर्ण का आदर-सत्कार भी होता रहा। दिन-प्रतिदिन घनिष्ठता भी बढ़ती रही; और एक दिन यही स्नेह बढ़ते-बढ़ते प्रेम का सरोवर हो गया—जिससे परितृप्त होकर भी सन्तोष न हुआ। सन्तोष कैसे होता ? उन दोनों के—नहीं, सब के हृदय जैसे बड़े-बड़े महासागर हो गये थे जिनका ओर है न छोर।

एक दिन अपनी स्कूल की मोटी-मोटी कापी के नीचे से एक काले कवर की मोटी-सी किताब निकालकर नवतारा से कहा—"यह देखी है तुमने ?"

नवतारा ने किताब हाथ से लेते हुए अत्यन्त गम्भीर भाव में कहा—"यह तो 'बासू' का अलजेबरा है; सबसे अच्छा अलजेबरा बस यही है।"—फिर ज़रा रुक कर पूछा—"कहाँ मिला है तुम्हें ?"

अनुराधा ने ओठों के भीतर मुस्कान दबाते हुए कहा—"मिल गया है !"

"भइया का है ?"

"न।"

"फिर किसका है ?"

"है किसी का।"

ज़रा सोचकर नवतारा बोली—"क्या उन्होंने दिया है ?"

अनुराधा ने सगर्व मुस्करा कर कहा—"हाँ ।"

नवतारा ने मुस्करा कर पूछा—"सच ?"

"सच !"

नवतारा फिर किताब के पेज उलटने लगी; शायद उसे विश्वास नहीं आ रहा था। अनुराधा ने रोककर पहला पेज खोला और एक जगह अँगुली धर कर कहा—"यह देखो !"

"विकर्ण......।"

सिर झुकाकर अनुराधा बोली—"देखा !"—और फिर धीरे-धीरे सब सुख भरी, उल्लास भरी एक-एक बातें उसे सुनाईं ।

नवतारा ने कहा—"तो 'इक्वेशन' तो तुम्हें ख़ूब आगई होगी ?"

"हाँ !"

"हमें भी बतला दो ।"

"अच्छा, बतला देंगे ।"

"आज ही हमको तो एक Simultaneous equation निकालना है । मास्टर साहब ने दिया है करने को । कुछ समझ ही में नहीं आता । शाम को मास्टर साहब देखेंगे, लेज़र में हमें समझा देना ।"

"अच्छा !"

और दोनों पढ़ने लगीं । तीनों पीरियड एक-एक करके समाप्त हो गये । चौथे में लेज़र था । नवतारा हाथ पकड़ कर लान में लेगई और किताब सामने रखकर बोली—देखो, एक तो यह है, दूसरा यह और तीसरा यह ।

अनुराधा ने किताब ले ली और सोचने लगी । बस सोचती ही रह गई । बड़ी देर में बोली—"यह तो हमें भी नहीं आता !"

"यह ?"

"न !"

"यह ?"

"यह भी नहीं !"

जब तीनों नहीं आये तो नवतारा ने मुस्कराहट भरी नाराज़गी से कहा—"तुमने बहुत अच्छा समझा है ?"

अनुराधा चुप रही।

न वहाँ तारा के सामने ही समझ सकी थी न यहाँ शिक्षक के सामने ही समझ सकी। वहाँ भी 'हाँ' कह दिया था, यहाँ भी 'हाँ' कहकर अपनी जान छुड़ाना चाहती थी। पर शिक्षक महाशय भी खूब ही निकले, बोले—"अच्छा, इसी को फिर निकाल कर दिखाओ।"

मगर अनुराधा न निकाल सकी फिर भी।

शिक्षक देख कर तनिक दुखी हुए और कहा—"इसी को फिर से समझो, देखो, जैसे यह उदाहरण है·········।"

उस दिन, उस समय तो जैसे कुछ सुना ही नहीं था; समझ में क्या खाक आता !—अब इस बार जो तनिक शान्त चित्त से डरते-डरते ध्यान दिया तो सब स्पष्ट हो गया, बड़ा सरल लगा अलजेबरा।

शिक्षक ने पूछा—"सब समझ में आ गया ?"

उसी काँपती-सी पतली आवाज़ में उत्तर दिया—"जी !"

"अब यह सवाल निकाल लोगी ?"

"जी !"

शिक्षक ने लाल निशानों की ओर सङ्केत करते हुए कहा—"इन पर खूब ध्यान देना, ये सवाल बड़े Important हैं।"

———

## ७

अम्मा तो सम्भवतः यह चाहती थीं कि विकर्ण सारे दिन बढ़िया-बढ़िया चीज़ें खाता रहे और बड़े भइया शायद यह चाहते थे कि अवकाश के समय वे हरदम विकर्ण के साथ रहें, हरदम फ़िलासफ़ी और दर्शनों की ही बातें चलती रहें और इन्द्र शायद यह चाहता था कि उन सब की मैत्री दिन प्रति दिन प्रगाढ़ होती जाय। विकर्ण भी

शायद यह चाहता था कि उसे कभी यह बात याद न आये कि वह अकेला है।

अनुराधा क्या चाहती थी, सो बताना ज़रा कठिन है। सदा-सदा तक प्रति सन्ध्या को शिक्षक के आगे बैठ कर, सिर डाल कर उनका समझाना सुनना चाहती थी कि जाने कुछ और चाहती थी ?

लज्जा और सङ्कोच के दुहरे-तिहरे आवरण में छिपे हृदय को कोई कैसे देख पायेगा—कैसे उस हृदय की कोई बात जान पायेगा ?

अलजेबरा की जो पुस्तक विकर्ण से मिली थी, उसे अनुराधा बहुत सँभाल कर रखती थी, बहुत सँभाल कर खोलती थी, बहुत सँभाल कर बन्द करती थी। किताब वाले ने कह दिया था—'ख़राब मत करना इसे।' क्योंकि पुस्तक से बढ़ कर विकर्ण के निकट और मूल्यवान् कोई चीज़ नहीं है। इस किताब की जिल्द पर काग़ज़ चढ़ा था।

किताब की जिल्द खोल कर देखा, सुवर्ण-अंकित-अक्षर चमक रहे थे। एकटक अपने भविष्य के सुनहरे इतिहास की कल्पित छाया उसी में अनुराधा देखती रही। उसकी आँखें उसी पर गड़ी रहीं। धीरे-धीरे, टप, टप, कर आँसू उसकी आँखों से बहने लगे।

क्यों ?

कोई क्या जाने ? कैसे अनुराधा के मन की बात बता सकता है, उसका हृदय सागर जो है !

चुपचाप अनुराधा अपने कमरे में आकर लेट गई। कमरे के किवाड़ बन्द कर लिये। और जाने किसी पत्रिका के एक फटे पन्ने को पढ़ती रही और रोती रही। उसके हृदय में भावों के तूफ़ान उठ रहे थे। मन व्याकुल हो रहा था। आँखों से आँसू झर रहे थे। अनुराधा सोच रही थी......

"संसार की नाट्यशाला में किसी दरिद्र को कष्ट झेलते देख मेरी याद करना......

किसी घृणा, उपहास और तिरस्कार के बीच मेरी सुध कर लेना......

किसी शोषित और पीड़ित की कहानी सुनाने बेला मेरी याद करना......

किसी अकिंचन को दुख झेलते, अपमानित होते देख, मुझे याद करना कहना, वह भी ऐसा ही था। संसार से ठुकराया हुआ, निराश्रित और आश्रयहीन.........!"

अनुराधा विकल हो उठी—"नहीं-नहीं, तुम आश्रयहीन नहीं हो, तुम मेरे हृदय के स्वामी हो, तुम मेरे मन पर शासन करते हो! .........तुम संसार में एक-एक से बदला लो, मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, शत्रुओं पर प्रहार करते-करते जब तुम्हारे हाथ थक जायेंगे तो खुद मैं प्रहार करूँगी। तुम हिम्मत न हारो.........।"

अम्मा ने आकर कमरे का द्वार थपथपाया। बोली—"चलो अन्नी, खालो बेटी।"

अन्नी चुप रही, बोली कुछ नहीं। अम्मा ने जाना सो गई है, सो फिर बुलाया नहीं, चली गई।

और अनुराधा के मुंह से कभी एक शब्द भी न निकला, न उसकी पतली अँगुलियों ने कुछ काग़ज़ ही पर लिखा। लिखती, या कहती कैसे, उसका हृदय अथाह जो है, सागर की भाँति! कभी एक बात भी मन की न उसके मुख से निकली और न किसी ने जानी पाई।

और जैसे उस पत्रिका के फटे पन्ने को पढ़कर भी हृदय से बाहर कुछ नहीं किया, ठीक उसी तरह उस दिन भी कोई भाव व्यक्त न किया जिस दिन 'मियादी ज्वर' की पीड़ा से विकर्ण का सारा शरीर जल रहा था और अम्मा बैठी उसका सिर दाब रही थीं। भइया बैठे टेम्परेचर देख रहे थे और दवाई की शीशियाँ उठा-उठा कर दवा पिला रहे थे। इन्द्र के चेहरे से परेशानी टपक रही थी। चिन्तातुर के नेत्र कुछ चाह रहे थे और अम्मा अपना अञ्चल पसार कर उसके

प्राणों की भीख माँग रही थी—"परमात्मा, मेरी गोदी मत सूनी करना, इसे मैंने अपना लड़का माना है। अपने माँ-बाप की अकेली सन्तान है। रात भर अम्मा उसके सिर और हाथों-पैरों के तलुवों पर तेल मलतीं रहीं और रात भर भइया सिरहाने बैठे बार-बार ज्वर का ताप देखते रहे। तब अनुराधा कितनी बार ऊपर जाकर द्वार के पास से लौट आई, सो भी नहीं मालूम, अपने कमरे में क्या करती रही सो भी नहीं मालूम............।'

मालूम ही कैसे हो सकता है, उसका हृदय सागर जो है! पर क्षणों से बने दिन और दिनो से बने सप्ताह, और सप्ताहों से बने महीने सबकी आँखों के सामने से उड़ते चले गये—ओझल होते गये।

भावनाओं का सागर चाहे छोटे से कोमल दिल में छिपा कर रोक लो, लेकिन समय का एक छोटा सा भी क्षण कहीं छिपाया नहीं जा सकता, न रोका जा सकता है। जैसे हवा का झोंका निकल जाता है, जैसे नदी की लहर भागती चली जाती है, वैसे ही जीवन के दिन भी उड़ते जाते हैं।

पढ़ाई की समाप्ति हो गई। परीक्षा के दिन आये और सब लड़कियों के साथ पर्चे हल करके अनुराधा अब मुक्त हो गई है। पढ़ाई से उसे छुट्टी मिल गई है। अब शिक्षक के सामने सिर डालकर, आँखें नीची किये-किये प्रश्न का उत्तर नहीं देना है और न उसको अब शिक्षक की कोई स्पीच ही सुननी है। जैसे अब तो उसको कोई चिन्ता या परेशानी ही नहीं है?......

## ८

"क्या करती रहती हो सारा दिन बैठी-बैठी ?"—नवतारा ने पूछा।

उत्तर दिया—"क्या करें ? कोई काम जो नहीं है।"

"काम चाहती हो, लो हम बतलाते हैं काम।"

"बतलाओ ?"

"माला है तुम्हारे पास कोई ?"

"हाँ, है तो, अम्मा के पूजा करने वाली माला।"

"तो देखो, बस माला ले लिया हाथ में और एकान्त में बैठकर, आँखें मूंदकर ध्यान आरंभ कर दिया और माला फेरते गये। और देखो ओठ बिना खोले ही भीतर ही भीतर—विकर्ण, विकर्ण, विकर्ण !"

अनुराधा देखती रही उसी की ओर।

"समझीं कि नहीं ?"

अनुराधा ने हँसी रोकने और गंभीर मुद्रा बनाये रखने की बहुतेरी कोशिश की; पर उसे हँसी आ ही गई, हँसते-हँसते कहा—"समझ में नहीं आता कि तुम्हारा क्या करें ?"

"क्या करोगी ?"

अनुराधा ने खीझकर कहा—"बस चले तो गोली से उड़ा दूँ।"

"न, न, न कहीं ऐसा न कर डालना नहीं तो फिर पछताओगी। जानती हो तुम्हारे चाहने वालों में एक हम भी हैं।"

अनुराधा कट सी गई। बोली कुछ नहीं। ठीक इसी समय सुशीला पड़ोस की रहने वाली सहपाठिनी दौड़ती हुई आई और अनुराधा का हाथ पकड़कर बोली—"अन्नी, तुम्हारे भइया पास हो गये ! यह देखो

उनका नाम निकला है। ला, अब मिठाई खिला। बिना मिठाई खाये मैं जाऊँगी नहीं !"

अन्नी का चेहरा खिल उठा। प्रसन्न होकर उसने कहा—"हाँ-हाँ, कितनी खायेगी तू मिठाई बोल।"

अनुराधा का हृदय तो आनन्दातिरेक से भर गया ही; पर उसके समीप कोई और भी था जिसकी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं रहा। नवतारा ने झपटकर 'लीडर' उसके हाथ से छीन लिया; इन्द्र का नाम पढ़ा और प्रसन्नता से विह्वल हो गई। इन्द्र एम० ए० में प्रथम आया था।

अब तो तुझे मिठाई खिलानी पड़ेगी तारा, तू अब बचकर जा नहीं सकती ?"

अनुराधा ने कटाक्ष किया—"और मैं तो भइया से साड़ी लूँगी। कहती थी मैं कि तुम 'फ़र्स्ट' आओगे। आखिर हुआ न वही।"

नवतारा ने खिले चेहरे से पूछा—"सच !"

"और नहीं तो क्या यूँ ही निकल जायेंगे ?"

और तभी नवतारा ने अख़बार के दूसरे कालम में निगाह डाल कर देखा और एक दम चौंक पड़ी—"अरे !"

"क्या है ?"—अनुराधा ने सरलता से पूछा।

नवतारा ने अख़बार पीछे छिपा कर कहा—"नहीं बतायेंगे। पहिले वायदा करो कि स्पंज रसगुल्ले खिलाओगी एक सेर !"

"क्या बात है ?"

"बात-वात कुछ नहीं, पहले वायदा करो।"

"अच्छा खिलाऊँगी, बता तो क्या बात है ?"

"लो देखो।"—अख़बार उसके आगे धर दिया। नाम के नीचे अँगुली रखकर कहा—"यह···।"

विकर्ण को युनिवर्सिटी से डाक्टरेट मिली थी !

अनुराधा के भावों का वर्णन यहाँ फिर रुक गया। उसका हृदय सागर जो है। प्रशान्त महासागर की भाँति! न वहाँ सुख की छाया है और न दुःख की कालिमा। सागर की भाँति गम्भीर!

सुशीला की समझ में मानो कोई बात नहीं आई, और न उस दिन ही की घटना उसे याद रही। उसने पूछा—"क्या है?"

नवतारा से मारे प्रसन्नता के संवरण न हो सका, कह दिया झट से—"यही अन्नी के भावी पति हैं, डाक्टर हुए हैं!"

सुशीला बड़ी प्रसन्न हुई, बोली—"अच्छा!"

केवल अनुराधा धोती का किनारा छूती रही, चुपचाप।

और इस छोटी-सी घटना के चौथे रोज की तो बात है कि अम्मा ज़मीन पर बैठी थीं, भइया पलँग पर थे और इन्द्र सामने खड़ा था। अम्मा के सामने काग़ज का बंडल खुला था और वह हँस-हँस कर कह रही थीं—"पूरा सनकी है! ये रेशमी साड़ियाँ उठा लाया है। इतने पैसे यूँ ही फेंक आया और अन्नी के लिए यह पुखराज के इयरिंग उठा लाया। कह रहा था—'बस, अम्मा, तुम रेशमी साड़ियाँ ही पहना करो, बड़े घरानों की सब बूढ़ी स्त्रियाँ इन्हीं को पहिनती हैं, बहुत अच्छी लगेंगी तुम्हें—यह फट जायेंगी तो और ले आऊँगा तुम्हें।'—कह गया है—"आज इसे ही पहिन कर खाना खिलाना सब को।"

भइया के हाथ में एक पुस्तक थी; वह उसका मुख्य पृष्ठ उलट कर देख रहे थे—समर्पण। भइया ही के कर कमलों में वह पुस्तक समर्पित की गई थी। पुस्तक का नाम था "The Doctrine and Philosophy of Buddhism", और इसी पर उसको डाक्टरेट की उपाधि मिली थी।

भइया ने कहा—"उसे तनिक भी सहायता नहीं दे पाता हूँ और न उसका कुछ आदर ही कर पाता हूँ। इच्छा होती है, उसे सब तरह से सब सुख दूँ, पर ग़रीबी कुछ करने ही नहीं देती है। कभी दस-पाँच रुपये भी उसकी जेब में नहीं डाल पाया!"

इन्द्र ने अम्मा को सुनाकर कहा—"भला तुम क्या जानो अम्मा कि विकर्ण हमारा कितना बड़ा विद्वान् है ! ईश्वर चाहेंगे तो देखना, किसी दिन सारे देश में उसका नाम होगा !"

अम्मा पुलकित हो उठीं, बोलीं—"अरे पढ़-लिख चाहे वह जितना ही जाय, चाहे सारे संसार में उसका कितना ही नाम क्यों न हो जाय, पर उसका स्वभाव नहीं बदलेगा, उसका लड़कपन थोड़े जायेगा, तुम देख लेना !"

भइया प्रसन्न हो उठे, मुस्करा कर बोले—"तुम जिसे लड़कपन समझती हो अम्मा वही तो उसका भोलापन है, देवतापन है; उसका हृदय तो देखो, दर्पण की भाँति स्वच्छ है। कहीं एक भी दाग़ नहीं।"

ठीक इसी समय अनुराधा नवतारा के घर से लौटी। और किवाड़ की आड़ से खड़े होकर सारी बातें सुन लीं। जब भइया की बात समाप्त हो गई तो आकर अम्मा के पास खड़ी हो गई। साड़ियाँ देखीं तो फ़ौरन् उठा लीं और पूछा—"भइया मेरे लिए नहीं लाये ?"

"विकर्ण लाया है"—अम्मा ने बता दिया।

अनुराधा के हृदय के अन्दर जाने कैसे-कैसे भाव उठने लगे। तूफ़ानों की बाढ़ आ गई। उसके मुख पर निराशा के भाव क्यों उमड़ आयें। पर उसने अपने मुख से कुछ नहीं कहा। कहती कैसे ? उसका हृदय सागर जो है ! हृदय के मनोभावों को तो वह अन्दर ही अन्दर दबा ले गई, पर न जाने क्यों उसकी आँखों में आँसू भर आये। उठ कर वह वहाँ से जाना ही चाहती थी कि इन्द्र ने कहा—"अन्नी ! यह तेरे लिए पुखराज का इयरिङ्ग लाया है विकर्ण।"—और इयरिङ्ग का केस उसके आगे फेंक दिया।

ठीक इसी समय बाहर से किसी के आने की आहट हुई। कौन आ रहा है ? सब उसी ओर देखते रहे।

विकर्ण था।

अम्मा ने देखते ही कहा—"लो आ गया, तेरी ही बात हो रही थी अभी !"

अनुराधा ज्यों की त्यों मूर्तिवत् बैठी रही ।

विकर्ण ने तनिक मुस्करा कर चप्पल उतारे और आगे बढ़ कर अम्मा की चरण रज ली, फिर भइया के पैर छुए और शरमाते-शरमाते कहा—"मेरी पुस्तक पर बारह सौ रुपये का पुरस्कार युनिवर्सिटी ने दिया है ।"

भइया मारे प्रसन्नता के उठ खड़े हुए और विकर्ण को छाती से लगा लिया । अम्मा हक्की-बक्की सी बैठी थी । इन्द्र की आँखों में प्रसन्नता के आँसू उमड़ आये । विकर्ण की आँखें भी आर्द्र थीं ।

अनुराधा वहाँ से जाने कब उठ आई । अपने कमरे में आकर आलमारी के किवाड़ पकड़ कर खड़ी हो गई और भीगी आँखों से दीवार पर टँगे कृष्ण जी के चित्र को देखती रही ।

———

## ६

यह सब किसने सोचा था ? पर स्नेह और सहानुभूति के बल पर क्या कुछ नहीं हो सकता है ?

पर अम्मा अब डरीं । वह अब उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुका है । वह अब डाक्टर हो गया है । अब यहाँ की पढ़ाई नहीं रही । यहाँ नौकरी मिलेगी तो रहेगा, नहीं तो कहीं दूसरी जगह चला जायेगा ! हाय कैसे उसे बाँध कर रक्खा जा सकता है ? एक दिन खाना खिलाते-खिलाते उससे कह भी दिया और आँखों में आँसू भर लाईं ।

विकर्ण अम्मा के इस प्यार पर रो पड़ा, बोला—"तो इसमें हर्ज ही क्या है अम्मा ! जहाँ भी रहूँगा वहीं तुम्हें ले जाऊँगा ।"

उसकी इन बातों से अम्मा को संतोष हुआ । अब हम फिर उन्हीं पुरानी बातों की ओर पाठकों को ले जाना चाहते हैं । करें क्या मजबूरी है । आज की घटना ही कुछ ऐसी है । आज विकर्ण को खाना खिला चुकने के बाद अम्मा चौके में बैठी जाने क्या सोच रही थीं । बहुत देर बीत गई पर वह सोचती ही रहीं ।

बहुत दिनों से सदा की भाँति वह बात जैसे उनके हृदय में उठती थी और वह दबा देती थीं, आज यह वैसा नहीं कर सकीं । यह रोज़ रोज़ मन ही मन सोचती थीं । हाँ, शायद एक-आध बार भइया और इन्द्र से कहा भी था । पर वह बात कुछ दब सी गई थी । बहुत दिनों तक फिर उसकी कोई चर्चा नहीं उठी ।

आज जब दस बजे रात को इन्द्र खाना खाने बैठा तो धीरे-धीरे वह बात अम्मा ने उससे कही । रसोई के भीतर अनुराधा बैठी छोटे भइया के लिए थाली परोस रही थी । उसके कानों तक शायद आवाज़ जा रही थी, पर शायद वह कुछ सुन नहीं पाई । या सुन लिया है एक-एक शब्द ? कौन जाने ?

इन्द्र ने कहा—"हाँ, लेकिन मैंने कभी उससे व्याह-शादी की चर्चा नहीं की है । जाने उसका क्या विचार है ?"

"तेरा कहना तो वह कभी टालता ही नहीं है, और न मेरा ही टालता है । पर मैं ठीक तरह से कह नहीं पाऊँगी, तेरा ही कहना ठीक है ।"

इन्द्र ने कहा—"देखो, क्या कहता है ।"

भइया जो अब तक चुपचाप बैठे थे, पास ही में, बोले—"हाँ, वह मान लेगा । इसलिए और भी मना नहीं करेगा कि मेरी परेशानी बहुत बढ़ जायेगी । वह बहुत समझदार है बेटा ।"

अम्मा ने उदास हो कर कहा—"यह न समझे कि हम ने इसी स्वार्थ के लिए······।"

भैया बीच ही में बोल उठे—"चुप भी रहो अम्मा। कहाँ तुम्हारा ख्याल है ? विकर्ण के मन में भला ऐसी ओछी बात कभी आ सकती है ? क्या हमने एक इसी बात को सोचकर उस से नाता किया था ?"

अम्मा ने कहा—"यही तो मेरा मतलब था।"

भइया ने कहा—"सब फ़िक्र-चिन्ता तुम त्यागो। उसे मेरा कहना मानते कितनी देर लगेगी ! और न मानने की कोई बात भी नहीं देखता।"

अम्मा ने कहा—"तुम्हीं जानो भइया, मेरी तो अकल मोटी है।"

भइया ने कहा—"इन्द्र सब ठीक कर लेगा।"

भइया और इन्द्र उठ गये तो अम्मा और अनुराधा खाने बैठी। आज मारे प्रसन्नता के अम्मा से खाया नहीं गया। शायद आधा पेट ही उठ आई। पर अनुराधा ने भी क्यों नहीं खाया। उसको कौन सी प्रसन्नता थी ? अम्मा के सिर का तो भार हलका हो गया था, पर अनुराधा के सिर का कौन सा भार हट गया था। अनुराधा के सुख-दुःख, दोनों का ही पता लगाना असम्भव है। उसका हृदय सागर की भाँति गंभीर है जो।

दूसरे ही दिन इस तरह की बात उठी कि व्यक्ति के जीवन का समाज के जीवन से क्या सम्बन्ध है ? और व्यक्ति का जीवन समाज के जीवन के लिए किस हद तक भूला जा सकता है ?

जब यह प्रश्न हो गया तो बात उठी—"कौन सा जीवन श्रेयकर हो सकता है; विवाहित या अविवाहित ?"

इन्द्र का जैसा ज्ञान है, समीक्षा कर दी कि दोनों ही में हानि और लाभ हैं। एक में बन्धन है, दूसरे में निराश्रयता। एक में आश्रय है, दूसरे में स्वातन्त्र्य। जो सत्य बात थी, जैसा समझा था, सो बतला दिया थोड़े शब्दों में।

सुनकर विकर्ण बोला—"यह तो है, पर 'परिस्थिति' और 'भावना' इनसे भी आगे है, परिस्थिति अपनी और भावना दूसरे की—फिर वह

इन दोनों का विश्लेषण कर के बतलाने लगा कि कैसी परिस्थिति में और कैसी भावना में किसको क्या करना उचित है। कहा कि—'इससे सिद्ध होता है कि सभी को 'विवाहित' जीवन बिताने का अधिकार नहीं है......"

फिर समाज और संस्कृति के ऋण की बात आई।

इन्द्र सुनता रहा चुपचाप और फिर हँस कर बोला—"हम लोगों को फिर किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। पहले वाला या पीछे वाला।

विकर्ण ज़रा मुस्करा कर बोला—"हम लोगों के लिए तो असल में विवाहित जीवन वाला मार्ग ही हितकर है। क्योंकि यह बात मैंने समझ ली है कि अविवाहित रह कर कोई आदमी······।"

आधी बात ही कह पाया था कि तीन-चार साथी आ गये। कहीं बाहर से 'डाक्टर' होने की बधाई देने आये थे।

विवाह की चर्चा वहीं छूटी। ये साथी सच तो यह है कि 'टुअर' करने निकले थे। विकर्ण को भी भरा और उसी दिन शाम की गाड़ी से 'खीर' खाकर दस रुपये लेकर, अम्मा से वह भी पचीस रुपये लेकर उन्हीं के साथ 'टुअर' पर चला गया। कह गया कि 'जल्दी ही लौटूँगा।'

इस जल्दी का मतलब क्या था, कुछ समझ में नहीं आया। क्योंकि पूरा एक मास बीत गया और विकर्ण न लौटा, न कोई चिट्ठी पत्री ही भेजी। अनुराधा का परीक्षा फल निकल गया। सेकेण्ड डिवीज़न' में हाई स्कूल पास हो गई। नवतारा भी पास हो गई।

इन्द्र की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा। घर आकर शाम को खाना खाते समय अनुराधा को लक्ष्य करके बोला—"अब और पढ़ेगी आगे ?"

अनुराधा ने उल्लास से कहा—"मुझे कालेज में पढ़ाओगे भइया ?"

इन्द्र ने कहा—"तेरा मन हो तो पढ़ना……।"

अम्मा सुन रही थीं। झूठी नाराज़गी का भाव दिखाते हुए बोलीं—"हाँ-हाँ, अब कालेज में पढ़ना, चाहे भइया के तन के कपड़े बिक जायँ, तुझे क्या ?"

अनुराधा का मुख उतर गया। सिर झुका लिया और धीरे से कातर-स्वर में बोली—"तो न पढ़ाओ, न पढ़ूँगी !"

भइया ठहाका मारकर हँस पड़े और अम्मा से बोले—"ऐसा भला क्या खर्च हो जायेगा कालेज में ! हाँ, अगर शादी आ पड़ी इसकी अभी तो फिर कैसे कालेज जा पायेगी ?"

अम्मा बोलीं—"न, अब मेरे बूते का नहीं कि अब इसे कालेज-फालेज भेजूँ। पढ़ना चाहेगी तो बहुत पढ़ जायेगी। विकर्ण तो इसे जिन्दगी भर पढ़ाता रहेगा। चाहेगा तो वह इसे पढ़ायेगा और चाहेगा न पढ़ायेगा। ब्याही बेटी पर अपना कोई अधिकार नहीं होता।"

अनुराधा तो पृथ्वी में समा जाना चाहती थी। अम्मा को क्या हो गया है जो भइया के आगे……!

भइया मुँह घुमा कर मुस्करा रहे थे। चुपचाप अनुराधा वहाँ से खिसक आई। किसी को भी कुछ पता न चला कि वह कब खिसक आई। वह आकर अपने कमरे में लेट गई।

नवतारा ने कभी हँसी में कहा था—बहुत दुख लगता है…… रात-रात भर जागती रहती हो……विरह की घड़ियाँ काटे नहीं कटतीं… खाना पीना नहीं भाता।

अब आज वह आकर देखे अनुराधा के दिन कैसे कटते हैं ?

कहा था एक बार उसने कि माला जपने से उसे शान्ति मिलेगी। अब आकर देखे कि उसके रोयें-रोयें से अजपा जाप हो रहा है—, विकर्ण…विकर्ण…विकर्ण। आज वह अनुराधा के हृदय के पास कान लगा कर सुने कि ठीक वैसा ही जप हो रहा है कि नहीं जैसे वह चाहती थी !"

"पर शान्ति ! शान्ति यहाँ कहाँ......?"

एक-एक दिन रोज़ जोड़ती जाती अनुराधा। उससे कोई भी पूछ सकता था कि विकर्ण कब गया है और अनुराधा उसका ठीक-ठीक हिसाब बता सकती थी। अम्मा भी रोज सोचतीं, न आया और न एक पत्र भी भेजा। सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि कहीं चला गया हो और अब फिर कभी भी न आये। फिर सोचती—न, ऐसा न होगा; ऐसा वह कभी न करेगा! लापरवाह है वह। उसको सहारा चाहिए। चाहिए कोई उसको ऐसा जो दिन-रात उसे राह दिखाये।"

पूरा एक महीना और तेरह दिन लगाये विकर्ण ने ख़ूब नाराज़ हुईं अम्मा उस पर। ख़ूब नाराज़ हुईं और बोलीं—"तुझे तो पीटने को जी चाहता है; निर्मोही कहीं का। जैसे तेरे हृदय में किसी की दया-माया है ही नहीं।"

विकर्ण ने हँसते-हँसते कहा—"हाँ अम्मा, तुम मुझे मार लो—जितना जी चाहे; लेकिन निर्मोही मत कहो; तो मैं फिर चला जाऊँगा कहीं, और तुम्हें ख़ूब दुःख दूँगा!"

अम्मा ने कहा—"अच्छा नहीं कहूँगी 'निर्मोही;' तू उठ खाना खा ले पहिले, भूखा लेटा है तब से, चल!"

अनुराधा बैठी थाली परोस रही थी। चुपचाप थाली परोस दी और और अस्थिर हाथों से पानी का गिलास भी धर दिया।

भइया भी रात नाराज़ हो लिये थे, देरी के लिए, अम्मा भी लड़ ली थीं। इन्द्र भी रूठ चुका था। केवल अनुराधा का मन किसी ने देखा भी नहीं, सुना भी नहीं। न किसी को अनुराधा की ओर से कोई चिन्ता ही है कि उसे वह निर्मोही कहेगी। वह उसे क्यों कुछ कहने लगी। वह उसकी लगती कौन है? अनुराधा घर में अकेली है; जैसे उसका संसार में कोई है ही नहीं। न मानो तो उसका मुख देख लो तुम्हें सब मालूम हो जायेगा; उसके सटे पतले होठ देख लो,

तुम सब कुछ जान जाओगे। उसकी डबडबाई आँखें देख लो तुम्हें सब बोध हो जायेगा।

इन्द्र ही एक ऐसा है जो उसे सहारा देता है, वही उसके अति निकट है। इसी लिए न जाने कितनी बार इन्द्र की गोदी में मुँह छिपा कर वह रो चुकी है। भाई-बहिन के इस प्यार पर किसे न ईर्ष्या हुई होगी। कौन नहीं उस पर मुग्ध हो जायेगा ?

इन्द्र की जूठी थाली में अनुराधा को खाते बहुत अच्छा लगता है। भइया जो छोड़ देते हैं उसी टुकड़े को पहिले खाती है। और अम्मा से ज़िद करती है कि उसी थाली में खाना परसे। अम्मा नाराज़ हो जाती हैं, कहती हैं कि दूसरी थाली में खाना खाया कर, पर वह मानती ही नहीं। जैसे भाई-बहिन का यह सम्बन्ध बहुत पुराना है, बहुत दिनों से चला आ रहा है।

इन्द्र जब खाकर उठ गया तो अनुराधा ने अम्मा को बुलाया, पर अम्मा ने कहा—"अभी तू खा ले मैं अभी कुछ देर में खाऊँगी।"

सो अनुराधा ने अपने लिए खाना परोस लिया। लेकिन यह तो भइया की जूठी थाली नहीं है, यह तो विकर्ण की है। वह अभी-अभी जो खाकर उठा है !

इन्द्र उधर से जब इलायची खाकर निकला तो अनुराधा को जैसे होश आया। पर······

---

## १०

एक पहर दिन चढ़ आया था। अनुराधा बैठी केले की फलियाँ छील रही थी। आज उसी की तरकारी और उसी का कबाब बनाना है। अनुराधा स्वयं बनायेगी अपने हाथों से। विकर्ण को यह चीज़ें बहुत स्वादिष्ट मालूम होती हैं। वह इन्हें यात्रा से लाया है; और भी जाने क्या-क्या भर लाया है !

विकर्ण इन्द्र के पास बैठा बातें कर रहा था, यात्रा की मज़ेदार कहानी सुना रहा था। सुनाते-सुनाते अचानक कह उठा—हाँ, एक बात तो भूल ही गया। जिस साथी के घर में ठहरा था, उसकी एक चचेरी बहिन थी। अच्छी लड़की थी। शायद इसी साल मैट्रिक पास हुई है। बस साथी मेरे पीछे पड़ गया, बोला—इसे स्वीकार कर लो! बेचारी लड़की को सामने भी ले आया। मैं तो लज्जा से मर गया। उस पर बड़ा गुस्सा आया और हँसी भी छूटी। इस संसार में अजीब-अजीब मनुष्य हैं!

इन्द्र का मुख पल भर के लिए विवर्ण हो गया। फिर ज़रा सँभाल कर अपने को बोला—"तो तुम ने क्या उत्तर दिया?"

"उत्तर क्या देता?"

"आख़िर, फिर भी?"

"फिर भी क्या। बिना उत्तर दिये ही वहाँ से खिसक आया, अपनी जान छुड़ा कर।"

इन्द्र को थोड़ा उत्साह मिला। ज़रा रुक कर फिर बोला—"वह उस दिन हम लोगों की बात आधी ही रह गई थी।"

"कौन सी?"

"विवाह वाली।"

अरे हाँ·····"

इन्द्र ने कहा—"मैं ने उस विषय पर और भी विचार किया है। अपने बारे में भी सोचा है और तुम्हारे विषय में भी।"

विकर्ण ने हँस कर कहा—"अच्छा बताओ अपने लिए क्या सोचा है और क्या मेरे लिए।"

इन्द्र ने हँसकर कहा—"सोचा है कि मैं तो अविवाहित रहूँ और·····"

विकर्ण बीच ही में बोल पड़ा—"और मैं विवाह कर के संसार में रम जाऊँ।"

इन्द्र और विकर्ण दोनों ठठाकर हँस पड़े।

ठीक इसी समय दरवाज़े पर पोस्टमैन ने पुकार कर कहा—"विकर्ण बाबू हैं यहाँ ?"

"हाँ, क्या है ? "—विकर्ण ने बाहर आकर पूछा।

"आपकी डाक है"—कहकर पोस्टमैन ने पत्र हाथ में दे दिया।

विकर्ण ने भीतर आकर पत्र खोला और शान्त भाव से उसे पढ़ा। देर होती देख इन्द्र ने पूछा—"क्या है, कहाँ से आया है "

ओठों पर दबी-सी मुस्कान लाकर बोला—"लो पढ़ो !"—और पत्र इन्द्र के आगे फेंक दिया।

इन्द्र ने पत्र उठाकर पढ़ा तो मारे प्रसन्नता के उछल पड़ा⋯मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"अरे !"

विकर्ण धीरे-धीरे गंभीर भाव से मुस्कराता रहा।

यह पत्र विदेश से आया है, जर्मनी से। विकर्ण ने दर्शन-शास्त्र का विशेष अध्ययन करने के लिये बर्लिन-विश्वविद्यालय में प्रार्थना-पत्र भेजा था; वह स्वीकार कर लिया गया था। सो उसी की स्वीकृति आई है। चार सौ रुपये मासिक पर; वह साथ ही साथ हिन्दी-विभाग का प्रोफेसर हो गया था। अन्वेषण का कार्य पाँच वर्ष तक चलेगा और तब तक वह प्रोफेसर भी रहेगा।

इन्द्र चकित भाव से विकर्ण का मुख देखता रहा; फिर रुक-रुक कर बोला—"तुम जर्मनी जाओगे विकर्ण ?"

"हाँ !'—विकर्ण ने उल्लास भरे मुख से उत्तर दिया—"अब तो सम्भव है जाना ही हो।"

इन्द्र स्तब्ध भाव से विकर्ण का मुख देखता रहा।

सहसा विकर्ण ने चौंककर कहा—"अभी अम्मा से मत कह देना; वह घबरा जायेंगी।"

"नहीं कहूँगा।"—इन्द्र ने दबे स्वर से कहा और जाने कैसा भाव विकर्ण के मुख पर छा गया।

संध्या समय जब कि विकर्ण कहीं घूमने चला गया तो अम्मा के पास आकर इन्द्र बैठ गया। उसका हृदय व्यथा से व्याकुल हो रहा था। आज बहुत दिनों के बाद वह अम्मा के इतना समीप बैठा था। इच्छा हुई उसकी कि खूब जी भरकर रोये अम्मा के आँचल में मुँह छिपा कर।

अम्मा ने पूछा—"कहो क्या हुआ बेटा ?"

इन्द्र बड़बड़ाता चला गया—"यह अधर्म हो जायेगा, अम्मा ! मैं विकर्ण को अब कैसे रोकूँ ? मैं उसे अब नहीं रोक सकता !"

"यह तुम क्या कह रहे हो बेटा। क्यों रोकोगे उसे, कहाँ जाने से रोकोगे ?"—अम्मा को जाने कैसा सन्देह हो रहा था। उनका मुख एक दम पीला पड़ गया।

इन्द्र ने कहा—"वह जर्मनी जा रहा है। उसकी जाने की बहुत बड़ी इच्छा है। उसे अभी और आगे पढ़ने की साध है; और उसे साथ ही साथ ४००) मासिक की प्रोफेसरी भी मिल गई है। मैंने उसे जाने की राय दे दी है। राय कैसे न देता, अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए, मैं समाज, जाति और देश के साथ थोड़े विश्वासघात कर सकता था। मेरा विकर्ण ज्ञान-उपार्जन करके देश की भलाई करे, जाति का मुख उज्वल करे यही मेरी एक मात्र अभिलाषा है। तुम उसे पुत्र मानती हो, वह तुम्हें 'माँ' कहता है—उसके कल्याण की तुम भी कामना करो। अम्मा, अन्नी के लिए मैं और योग्य वर खोज लूँगा। विकर्ण को इस उलझन में मत फँसाओ। उसकी उन्नति रुक जायेगी ! तुम्हारे पैरों पड़ूँ माँ; तुम उसे रुकने के लिए मत कहना !"

अम्मा को जैसे काठ मार गया। इन्द्र अर्ध-विक्षिप्त-सा हो गया था। अम्मा ने अपने को सँभालते हुए कहा—"तो उसे न रोकूँगी—"और रोती-रोती आँगन से हट आईं।

इन्द्र ने कहा—"हाँ, उसे जाना ही चाहिए, कभी किसी तरह उसे आदर नहीं दे सका, कभी कुछ सहायता नहीं कर सका; हृदय के बल

पर—आत्मा के बल पर—स्नेह का बन्धन उससे बँध गया है तो स्वार्थ से उसे काटूँगा नहीं—हाँ, यह स्वार्थ है······"

अम्मा भीतर आकर चारपाई पर औंधे मुँह लेट रहीं। भइया ने उस दिन मारे रंज के खाना ही नहीं खाया। केवल अनुराधा ही सब समाचार सुन कर भी चुप रही। उसके मुख पर क्या भाव अंकित हुए, इसे किसी ने भी नहीं देखा। कोई कभी भी उसके हृदय के भावों को नहीं जान पाया है; सो आज भी कोई नहीं जान पाया। जान कैसे सकता है, उसका हृदय सागर जो है ?

इस घटना के तीसरे दिन, इन्द्र और विकर्ण बैठे भविष्य का प्रोग्राम बना रहे थे। विकर्ण ने कहा—"मेरा भविष्य का प्रोग्राम यह है कि—दर्शन-शास्त्र की उपादेयता मैं चाहता हूँ, केवल 'थियोरी' ही नहीं। मैं चाहता हूँ कि समाज के हित के लिए इसको अमल में लाऊँ। सारा संसार आगे बढ़ गया और हम ज्यों के त्यों पीछे पड़े हैं। कार्ल मार्क्स के शब्दों में—"मैं और दार्शनिकों की भाँति केवल दुनिया के तत्वों ही पर प्रकाश नहीं डालना चाहता, बल्कि मैं दर्शन की सहाय से दुनिया को बदलना चाहता हूँ। कार्लमार्क्स, एंगिल्स, लेनिन, स्टालिन सभी जिस रास्ते पर चलते चले आये हैं समाज के कल्याण की बात लेकर, आज हम भी उसी रास्ते पर जा रहे हैं। बर्लिन से लौट आकर मैं अपने इस विषय की शिक्षा-दीक्षा तो दूँगा ही; देश को कुछ और भी दे सकूँगा, वह सब मेरे मस्तिष्क में है। इन्द्र, तुम्हारा प्रेम रहे मुझ पर······"

इन्द्र ने जैसे हँसी की, बीच ही में बोल पड़ा "और वह विवाहित जीवन वाला प्रोग्राम ?"

विकर्ण ने तनिक मुस्करा कर कहा—"इन्द्र, एक दिन मैंने तुमसे कहा था कि सब को विवाहित जीवन बिताने का अधिकार नहीं है, याद है तुम्हें ?"

"हाँ, याद है !"

"तो मुझे भी उन्हीं लोगों में गिन लो। बहुत दिन हुए तभी यह निश्चय कर लिया था कि—ज्ञान की खोज करूँगा। माता-पिता नहीं है। मातृ-भूमि ही मेरी माँ रही, देश ही पिता रहा—इनकी सेवा करना तभी सोच लिया था। और मैं दरिद्र क्या अपने इस क्षुद्र जीवन का ध्येय बनाता ?"

इन्द्र ने कहा—"अम्मा ने तो जब से सुना है, तभी से रो रही हैं, उनके लिए क्या करोगे ?"

"अम्मा !"—विकर्ण ने कहा—"उसके चरणों पर सब निछावर है, कहे तो न जाऊँ—कहे तो जाऊँ, मैं अपराधी नहीं बनना चाहता इन्द्र भइया !"

"अपराधी तुम नहीं हो।"—इन्द्र ने आँसू भरी आँखें घुमाकर कहा। ठीक आज के बारहवें दिन The City of Benares (बनारस का नगर) नामक जहाज़ से यात्रा करने का निश्चय कर लिया है विकर्ण ने। हवा के झोंके के सदृश दिन बीतते गये और आज वह बारहवाँ दिन भी आ गया। सारी तैयारी हो गई है। आज शाम की गाड़ी से विकर्ण बम्बई जा रहा है। बम्बई से जहाज़ पर बैठेगा। जहाज़ उसे जर्मनी ले जायेगा !

तीन-चार रोज़ पहिले से उसके लिए 'सत्कार-सभाएँ' और पार्टियाँ हो रही थीं। आज भी युनिवर्सिटी में अध्यापकों और छात्रों की ओर से अभिनन्दन था। 'युनिवर्सिटी यूनियन' ने भी पार्टी दी थी। लगभग दस बज रहे थे। इन्द्र सामान ठीक करवा रहे थे। अम्मा 'मूँग के लड्डू' उसके पानी पीने के लिए बना रही थीं। अनुराधा भी सामान बँधवाने में सहायता कर रही थी। उसका जी न जाने कैसा हो रहा था। चाहती थी कि 'इस क्षण' उसकी भी कुछ उपयोगिता सिद्ध हो सके; कोई उससे भी काम ले ले इस समय !

विकर्ण ने याद करके कहा—"इन्द्र भइया, हम लोगों को युनिवर्सिटी भी चलना है !"

इन्द्र भइया ने 'होल-डाल' में बिस्तर रखते-रखते कहा—"फिर ?" तो इस चर्खे को खतम करो जल्दी और तैयार—"और तुम भी" —फिर ज़रा अनुराधा की ओर मुड़कर धीरे से कहा—"और तुम भी, अन्नी !"

विकर्ण भी कपड़े पहिनने गया उधर। इन्द्र हाथ-मुँह धोकर लौटा। अनुराधा निश्चल खड़ी थी, वहीं बँधे हुए सामान के पास, निस्तब्ध सी !

इन्द्र ने पुकारा—"अन्नी !"

अनुराधा ने भावहीन दृष्टि उठा दी।

इन्द्र ने पूछा—"तू चलेगी ?"

कुछ नहीं बोली।

इन्द्र बोला—"चल न तू भी, साड़ी बदल ले जल्दी से।"

---

## ११

छात्रों की ओर से 'यूनियन' के सेक्रेटरी ने 'फ़ेअरवेल ऐड्रेस' दिया। उसने पढ़ना आरम्भ किया—"हे बन्धु, सुख और स्वतन्त्रता भरे देश में, धनिकों और विद्वानों के बीच में, भारत के इनमुखभरे और अशिक्षित भाइयों को मत भूल जाना। जिन्हें तुमने अपनी प्रेम-डोर से बाँध रखा है, जिनके तुम एक मात्र प्रतिनिधि हो, उन्हें कदापि न भूलना........."

सब की आँखें सजल हो गईं। सहसा इन्द्र ने आँखें घुमाकर देखा—अनुराधा के ओठ 'थर-थर' काँप रहे हैं और आँखों की कोरों से आँसू लटक रहे हैं। धीरे-धीरे आँसुओं की एक पतली-सी धार बँध गई। अब शायद वह फूट कर रो उठेगी।

बगल में बैठे हुए इन्द्र ने हाथ थाम कर स्नेह भरे कंठ से कहा—

"अन्नी !"—और हाथ दबा दिया । अनुराधा ने रुमाल से अपनी भीगी आँखें पोंछ ली और सँभल कर बैठ गई ।

'वाइस चैन्सलर' खड़े हुए, कहा—"प्यारे पुत्र विकर्ण......"—उनका गला भरा हुआ था । ज़रा कुछ रुक कर बोले—"आज हमारे हर्ष और दुःख, दोनों का पारावार नहीं है । हर्ष इस बात का है कि तुम आज अपने देश का, अपनी युनिवर्सिटी का और मेरा गौरव बढ़ाने जा रहे हो । दुःख इस बात का है कि तुम हमसे बिछुड़ रहे हो, कुछ काल के लिए । खैर कुछ भी हो, हम सारा दुःख सहन करेंगे, देश का मस्तक ऊँचा करने के लिए......"

अनुराधा आँखों से रुमाल लगाये सब सुनती रही । उसके जी में जाने कैसे क्या हुआ ?

"........हाँ, तो हमें तुम पर नाज़ है, गर्व है । हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम एक दिन अपने देश का मस्तक ऊँचा करोगे । तुम्हारा जीवन ही देश के लिए है । देश के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है........"

युनिवर्सिटी की दो छात्राएँ पास बैठी थीं । एक ने धीरे से कहा—"क्या यह विकर्ण की बहिन हैं ?"

दूसरी ने कहा—"नहीं, शायद पत्नी हैं ।"

उसने उत्तर दिया—"नहीं, अभी उनका विवाह नहीं हुआ ।"

अनुराधा के कानों में यह सारी बातें पहुँची । चुपचाप वह सुनती रही । एक बार भी उधर सिर घुमाकर नहीं देखा । चुपचाप 'डायस' ही की ओर ताकती रही । बार-बार उसका मन न जाने क्या कह रहा था, अपने ही अपने में क्या सोच रहा था । यदि उस स्थान पर कोई भी मनोविज्ञान का पंडित होता तो वह स्पष्ट कह सकता था कि अनुराधा आज अपने को जाने कितना तुच्छ सी जान पड़ती है । सूर्य के सम्मुख दीपक है ।

ऐडरेस समाप्त होने के बाद 'टी-पार्टी' हुई, फिर माला पहिना कर विकर्ण को विदा किया।

साढ़े छः पर गाड़ी छूटती है। पाँच बज चुके हैं। सामान सब बँधा तैयार रखा है। साथी लोग स्टेशन पर जाने की तैयारी कर रहे हैं। दो-तीन साथी आये और सामान लेकर स्टेशन की ओर रवाना हो गये। विकर्ण खाना खा रहा है। इतनी पार्टियों में सम्मिलित होकर, अब इस अन्तिम बेला अम्मा के हाथों की बनी खीर, पूड़ियाँ खा रहा है। अनुराधा परोस रही है। खाना अम्मा ने ही अपने हाथों से बनाया है। विकर्ण खा रहा है। इन्द्र भी साथ ही बैठा है। वह भी खा रहा है। दोनों एक ही थाली में खा रहे हैं। आँखों में आँसू भरे भइया इधर-उधर जाने क्या करते फिर रहे हैं।

विकर्ण खाते-खाते बोला—"अम्मा, तुम मुझे पत्र ज़रूर भिजवाती रहना।"

अम्मा न बोलीं।

विकर्ण ने सिर उठाकर देखा—आँखों से आँसुओं की धार बँधी थी। वहीं हाथ रुक गया, फिर भरे गले से कहा—"मैं नहीं खाऊँगा।"

अम्मा ने आँसू पोंछ लिये और रुँधे कण्ठ से कहा—"क्यों नहीं खायेगा ?"

"तुम सामने बैठकर रोओ, और मैं खाऊँ! मुझसे तो नहीं खाया जाता!"—विकर्ण ने भरे गले से कहा।

अम्मा की आँखों से फिर आँसुओं का बाँध उमड़ पड़ा। विकर्ण भी रो पड़ा, बोला—"अच्छा, अब मैं जाऊँगा अम्मा, तू रोती है।"

अम्मा ने कहा, जी कड़ा करके—"नहीं रोऊँगी, तू खा ले, आख़िरी बार……"—विकर्ण सिर झुका कर फिर खाने लगा।

चलती बेला अम्मा ने माथे पर रोली-चावल का तिलक लगाया, फिर माला पहिना कर उसके मस्तक पर फूलों की वर्षा की। विकर्ण

ने उनके चरण स्पर्श किये। अम्मा ने उसे छाती से लगा लिया। रुँधे कण्ठ से बोली—"भूलिये मत निर्मोही !"

विकर्ण की आँखों से छल-छल कर के आँसू बह निकले। उसने रोकर पुकारा—अम्मा।"

तब अम्मा भी खूब फूट कर रो उठीं। उसको छाती से लगा लिया और करुण-क्रन्दन कर उठीं।

विकर्ण उनके कन्धे पर सिर रखे फफक रहा था। उसके आँसुओं से अम्मा की 'रेशमी' साड़ी भीग रही थी।

इन्द्र से यह दृश्य देखा नहीं गया। वहाँ से हट आया और 'मूँग के लड्डू' और 'पूरियाँ' जो अम्मा ने विकर्ण को रास्ते के खाने और पानी पीने के लिए बना दी थीं, लेकर स्टेशन चल दिया।

सारा घर सूना हो रहा था। और तो शायद कोई जगह न थी जो कि बिल्कुल ही सूनी हो गई हो; पर ऊपर का कमरा, बिल्कुल ही सूना हो गया था। उसी सूने कमरे की खिड़की पर टेक दिये अनुराधा खड़ी थी। आज वह सदा के लिए सूना हो रहा है—अब सदा इसी तरह सूना रहेगा।

आँखें लाल हो गई थीं, उनसे मोती झर-झर पानी के रूप में बह रहे थे। चारों ओर सब मूक था। अनुराधा के मुख से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। इतने बड़े घर में यह अपेक्षित टुकड़ा जैसे सदा ही से मूक रहता आया है। उसकी गंभीरता की कोई सीमा भी है ?

विकर्ण ने रुमाल से आँखें पोंछते आकर पुकारा—"अन्नी।"

यही प्रथम पुकार थी अनुराधा के जीवन की !

अचकचा कर सिर घुमाया। सहम सी गई, पलक रुक गये।

विकर्ण ने आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और धीरे से बोला—"इधर आओ।"

अनुराधा बेहोश सी, निरजीव पुतली की भाँति चली गई। इधर कोने में लाकर विकर्ण ने शान्त स्वर में कहा—"क्यों रो रही हो ?"

अनुराधा चुप रही, बोली कुछ नहीं।

तभी जेब से एक काग़ज़ की पुड़िया निकाल कर एक छोटी सी नीलम जड़ी अँगूठी उसकी अगुली में पहना दी और करुण-स्वर में बोला—"यह इस अकिंचन की भेंट है; इसे अपने व्याह के दिन ज़रूर पहिन लेना !"—और हाथ पकड़े कुछ देर तक खड़ा रहा।

अनुराधा जैसे बेसुध हो गई थी। हाथ पकड़े-पकड़े विकर्ण ने कहा—"अन्नी !"

अन्नी चुप रही, मूक-सी। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला।

विकर्ण का स्वर काँपने लगा, उसी काँपते स्वर में कहा—"अपने सुख के दिनों में मुझे भी याद करना अन्नी, तुम्हारे घर में एक अभागा और बन्धु-बान्धव हीन दरिद्र आकर आश्रित हुआ था......"

अनुराधा सब सुनती रही, बोली कुछ नहीं।

विकर्ण ने रोदन भरे गले से कहा—"अन्नी ! तनिक मेरी ओर देखो !!"

तब आँसुओं से भीगा हुआ मुख अनुराधा ने ऊपर उठा दिया। आँखों में आँखें समा गईं।

विकर्ण ने अपने हाथ से बहते आँसुओं की धार पोंछी और स्वयं रुँआसा-सा होकर कहा—"याद करोगी कभी अन्नी !"

अनुराधा पत्थर की प्रतिमा बन गई थी। वह टस से मस न हुई, रत्तीमात्र भी बोली नहीं। भइया आ रहे थे, विकर्ण को बुलाने। गाड़ी छूटने में देर हो रही थी। साथी बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। यूनिवर्सिटी के एक प्रोफ़ेसर अपनी कार लेकर उसे स्टेशन पर पहुँचाने के लिए आये थे। स्टेशन पर तो 'सी-आफ़' करने

के लिए बहुत से विद्यार्थी जमा थे। भइया कमरे के पास आ गये और पुकारा विकर्ण को।

विकर्ण ने अनुराधा का हाथ धीरे-धीरे छोड़ दिया। भीगी आँखों की कोरों से देख कर बोला धीरे से—"नमस्ते !"

प्रोफ़ेसर साहब ने मोटर का द्वार खोल दिया। विकर्ण मोटर के पास आ खड़ा हुआ। अम्मा ने आरती उतारी। भइया ने हाथों में नारियल देकर विदा किया। भइया की आँखें भीगी थीं। विकर्ण ने भइया के पैर छुए। भइया ने उसे छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया।

अम्मा द्वार पर खड़ी रोती रहीं।

भइया और विकर्ण मोटर पर बैठकर स्टेशन चले गये !

अभी गाड़ी छूटने में दस मिनट की देर थी। विद्यार्थी साथियों ने ५०१) की थैली भेंट की। विकर्ण ने थैली भइया को दे दी।

भइया बोले—"इसे तुम अपने पास ही रखो बेटा। सफ़र में जा रहे हो। तुम्हें रुपये की आवश्यकता पड़ेगी।"

"मेरे पास काफ़ी रुपये हैं"—विकर्ण ने कह कर थैली ज़बरदस्ती ठूंस दी।

"नहीं बेटा, मेरा कहना मान जाओ।"

"नहीं भइया, इस रुपये को अनुराधा की शादी में लगा देना।"

इन्द्र ने विकर्ण के चरणों की पद-रज ली। गाड़ी सीटी देकर आगे बढ़ी। इन्द्र और भैया डबडबाई आँखों से आगे भागती हुई गाड़ी को देखते रहे। साथी रूमाल हिला रहे थे और विकर्ण खिड़की के बाहर मुंह निकाले इसी ओर को झाँक रहा था।

संध्या बदल कर रात में परिणत हुई। क्षितिज के किनारे पर गहरे सुरमई रङ्ग के बादल उठे और फिर धीरे-धीरे चारों ओर फैल गये। आकाश में चारों ओर काली-काली घटाएँ उमड़-घुमड़ कर घिर आईं। पुरवैया हवा बह रही थी। घर के सामने का

नीम का पेड़ झूमने लगा और पट-पट करके उसकी निंबौरी गिरने लगी।

गली के उस पार जो रईस रहते हैं, उनकी छत के बड़े कमरे में रेडियो बज रहा था—

"प्रीत डोर से मन क्यों बाँधा।"

अनुराधा आँख फाड़-फाड़ कर सामने की सूनी खिड़की को देख रही थी। टप्-टप् करके उसकी आँखों से आंसू गिर रहे थे। धीरे धीरे छाती के नीचे रखा तकिया भीग रहा था।

पश्चिम में बादलों के दो टुकड़े टकरा कर गड़गड़ा उठे और क्षण भर का तीव्र प्रकाश होकर बुझ गया।

अनुराधा ने अंचल से आँखें पोंछी; अनन्त दूरी तक फैले, काले आसमान की ओर देखा और हाथ की अँगूठी का नीलम ओठों से लगा लिया.........।

आकाश में मेघ गड़गड़ा रहे थे, बिजली चमक रही थी और नन्ही-नन्ही बूंदें गिर रही थी।

---

## १२

दो वर्ष हो गये, दो पूरे हो गये, चाहे एक-आध महीना कम हो। तब से अब में बहुत परिवर्तन हो गया है। सभी कुछ जैसे बदल गया है। सड़क वाला तँबोली अब भी सन्ध्या की बेला अपनी दूकान के आगे छिड़कावा करके बैठता है। अनुराधा सब कुछ देखती है। पान वाली दूकान पर बैठती है और पान वाला जो अपनी वीणा बजाता है। अनुराधा के घर के सामने वाली खिड़की जो उसके जीवन का अभिशाप बनकर आई थी; अब भी खुलती बन्द होती है। उसमें अब भी कभी-कभी प्रकाश होता है; कोई सामने मेज़ डालकर, लैम्प

जला कर पढ़ता है। पर इन सबसे क्या ? अनुराधा तो एक बार भी उस ओर नहीं देखती। वह कभी खिड़की पर आती ही नहीं। जैसे उसका जीवन ही एक दम बदल गया है। नदी तो एक ही है, केवल उसका प्रवाह ही बदला है। वह एक अज्ञात दिशा की ओर बह रही है।

हर पन्द्रहवें रोज़ सोमवार को वह 'हवाई डाक' की प्रतीक्षा मन के भीतर ही भीतर करती रहती है। कभी उसने उत्सुकता नहीं दिखाई, कभी उसने अम्मा से भी नहीं पूछा कि आज 'डाक' आई कि नहीं।

बात यह है कि हर सोमवार को प्रति पखवारे विकर्ण का पत्र आता है। आज उसे गये पूरे दो वर्ष हो रहे हैं लगभग, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक दिन की विलंब हो गई हो ! सदा सोमवार को उसका पत्र आता ही है और अम्मा पत्र लेकर पढ़ती हैं। सारा कुशल जान कर वह पत्र अनुराधा को दे देती हैं। अनुराधा पत्र की एक-एक बातों को भली भाँति देखती है। देखती है—लिफ़ाफ़े पर दो मार्क का बर्लिन का लाल टिकट लगा है, उस पर स्वास्तिका का टेढ़ा चिन्ह अंकित है। लिफ़ाफ़े पर 'सेन्सर' आफ़िस की मोहर लगी है। फिर पत्र पढ़ती। एक-एक बात पत्र की पढ़ जाती। एक बार नहीं, वह कई-कई बार पत्र पढ़ती ! देखती पत्र में उसका कहीं कोई ज़िक्र ही नहीं है। वह हर बार यही करती। जाने उसको कैसा आनन्द आता।

पत्र का उत्तर भी अम्मा उसी से लिखवातीं। अम्मा बोलती जातीं, अनुराधा लिखती जाती। अम्मा कहतीं—"तू भी अपनी ओर से प्रणाम लिख दे।" अनुराधा उत्तर देती—"लिख दिया।" पर पत्र में अपना ज़रा भी ज़िक्र न करती, यहाँ तक कि प्रणाम भी न लिखती। प्रति पन्द्रहवें दिन यही नाटक खेला जाता और फिर पन्द्रह रोज़ के लिए जैसे उसे छुट्टी मिल जाती।

सब लोग जानते हैं कि अनुराधा में घोर परिवर्तन हो गया है। वह जैसे काठ की पुतली हो गई है। न किसी से कुछ बोलती है, न

खालती है, सदा गुम-सुम-सी बनी रहती है। अम्मा के पास भी बहुत ही कम बैठती है। रात को जब कभी खाना-वाना खा चुकने के बाद अम्मा बुलाती हैं तो उनके पास जा बैठती है और उन्हें रामायण सुना देती है। पर जैसे उसका मन बिलकुल ही नहीं लगता है। उसको इन सब कार्यों में जैसे कोई दिलचस्पी ही नहीं है। बड़े भइया उसका यह हाल देख कर भीतर ही भीतर दुखी रहते हैं; अम्मा तो दिन-रात इसी चिंता में घुली जाती हैं।

एक दिन इन्द्र ने पूछा अनुराधा को एकान्त में बुलाकर—"अन्नी सच बताना, अपने इन्द्र भइया से कुछ भी मत छिपाना—तुम विकर्ण से प्रेम करती हो?"

अन्नी कुछ नहीं बोली। केवल भइया की गोद में सिर रखकर खूब रोई। जैसे उसके धैर्य का बाँध टूट गया। जैसे उसकी छाती में किसी ने बर्छी भोंक दी हो। वह फूट-फूट कर रो उठी। भइया का भी गला भर आया। वह भी रोते हुए बाहर निकल आये।

सुख के दिन और दुःख के दिन, दोनों ही कट जाते हैं। उनको जैसे कटना ही है। जीवन का नाम ही सुख-दुख और दुख-सुख है। फिर इसमें हँसना और रोना क्या। जो हँस कर रोया और जो रोकर हँसा, उसमें अन्तर ही क्या है। दोनों ही तो समान हैं। और ऐसा जान पड़ता है अनुराधा इसे भली भाँति जानती है। तभी तो उसने आज तक कोई भी बात किसी से नहीं कही। उस दिन भइया की गोद में भी कुछ आँसू बहा दिये थे, बोली कुछ नहीं।

इसी तरह आधा वर्ष और बीत गया। इसी बीच में कई अनोखी और सुखप्रद घटनायें भी घटीं जिसका उल्लेख करना भी अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इन्द्र का नवतारा के साथ ब्याह हो गया। बहू अम्मा की देखी थी। उनको कोई एतराज़ ही नहीं पैदा हुआ। बड़े भइया ने इन्द्र की पसन्द पर ब्याह छोड़ दिया था, सो इन्द्र इस ब्याह को कैसे टाल सकता था। ब्याह की तिथि निश्चित की गई।

ब्याह हुआ। ख़ुशियाँ मनाई गईं। सभी लोग घर में ख़ुश थे। आज ऐसे शुभ अवसर पर अनुराधा भी ख़ुश दीख रही थी। उसके अधरों पर भी मुस्कान फूटी पड़ रही थी। प्रसन्न क्यों न होती? उसके भइया का ब्याह जो है।

हँसी-ख़ुशी के साथ ब्याह भी समाप्त हो गया। हाँ, एक बात अवश्य हुई थी। नवतारा जब घर में बहू बन कर आई तो अनुराधा से मिली। यों तो वह उससे अनेकों बार मिल चुकी है। पर आज के मिलन में कुछ और ही स्नेह था, कुछ और ही आदर था, कुछ और ही संकोच था। अनुराधा और नवतारा को पास-पास बैठे देखकर इन्द्र की आँखों में जैसे आँसू उमड़ आये; पर वह उन्हें ज़बरन पी गया। रात्रि की बेला जब नवतारा ने पूछा तो केवल इतना ही कहा—"विकर्ण नहीं है, आज के ऐसे शुभ अवसर पर!"

नवतारा चुप रही।

इतने ही से नाटक का अन्त नहीं हुआ। इस नाटक के पन्ने बहुत जल्दी-जल्दी पलटते गये। यह तो उस नाटक का पहला ही पन्ना था। इन्द्र और नवतारा जब आनन्द के दिन बिता रहे थे तो सहसा एक दिन बड़े भइया के हृदय की गति बन्द हो गई। कुहराम मच गया सारे घर में। इन्द्र सिर पीट-पीट कर ख़ूब ही रोया। अम्मा की रोते-रोते आँखें सूज आईं। और अनुराधा! उसको कभी किसी ने भी रोते नहीं देखा। हाँ, उस दिन उसे मूर्च्छा अवश्य आ गई थी। पर जब कभी भी उसके मुख की ओर देखो, उसकी आँखों में डूबने की चेष्टा करो तो मालूम होता है कि उसकी आँखों में बाढ़ आ रही है। वह जायेगी। पर शान्ति पल भर के लिए भी उसके मुख से अलग नहीं हुई।

अब घर का सारा बोझ इन्द्र के ऊपर आ पड़ा था। इन्द्र को माँ और बहिन का निर्वाह तो करना ही था। उसके सम्मुख एक अजीब पहेली थी। विकर्ण के सामने बैठकर उसने देश-सेवा की प्रतिज्ञा कर ली थी। अब उस प्रतिज्ञा को भी पूरा करना था और घर को भ

देखना था। उसने निश्चय किया कि ग्राम-सुधार में नौकरी करके वह देश और कुटुम्ब दोनों ही की सेवा करता रहेगा। नौकरी की उसने दरख्वास्त भेजी। ग्राम-सुधार संयोजक की जगह भी उसे मिल गई। सौ रुपये वेतन की जगह थी। घर के कार्य में जो बाधा आ खड़ी हुई थी, वह भी हल हो गई।

विकर्ण भी हर महीने लगभग सौ रुपये प्रति मास अम्मा के पास भेज देता है। जब से भइया की मृत्यु का समाचार उसे मिला है, उसने अपने बहुत से खर्चे रोक कर यह रक़म अम्मा को भेजनी आरम्भ की है।

और इसी तरह उन लोगों का कारोबार चलता रहा। घर से इतनी दूर जो एक प्राणी है, उसे सभी कोई दिन में एकाध बार निश्चय ही याद कर लेते हैं। और 'कोई' ऐसा भी है उस घर में जो सदा उसी के नाम की माला फेरा करता है। नवतारा ने उससे अब फिर कभी नहीं पूछा कि अब दिन कैसे कटते हैं। अब तो वह जानती है कि दिन किस प्रकार कटते हैं। नवतारा और अनुराधा में अब कभी इस प्रकार की बात नहीं होती। नवतारा ने भी कभी नहीं छेड़ा और न अनुराधा ही ने कभी कोई चर्चा की।

बहुत दिनों के बाद इन्द्र ने अम्मा के रोज़-रोज़ के अनुरोध पर अन्नी के लिए एक योग्य वर खोज दिया। वर एम० ए० फ़ाइनल में पढ़ता था। अम्मा को बहुत पसंद आया। नाम था उसका बिहारी। घर से सम्पन्न है। ज़मींदार का बेटा है। चाचा डाक्टर हैं। डाक्टरी उनकी ख़ूब ही चलती है। माँ-बाप सभी हैं। माँ-बाप का अकेला लड़का है। पढ़ने-लिखने में भी तेज़ है। अम्मा को वर बहुत ही पसंद आया।

नवतारा ने अनुराधा से पूछा—"तुमको वर पसन्द है?"

अनुराधा की आँखों में आँसू भर आये। बोली—"भइया अम्मा को पसंद चाहिए; मुझको क्या!"

नवतारा के कलेजे में जैसे चोट-सी लगी। ज़रा देर चुप

रहकर बोली—"अम्मा को तो पसन्द है; पर तुम्हें पसन्द है या नहीं ?"

समुद्र की तरह गम्भीर स्वर में अनुराधा बोली—"बस अम्मा को पसन्द होना चाहिए। मैं अम्मा को दुखी नहीं कर सकती।"

अम्मा प्यारी अन्नी का यह उत्तर सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं। इन्द्र से बोलीं—"जितनी जल्दी हो सके बेटा अनुराधा को निबटा दो। पराई बेटी अपने घर में नहीं रखनी चाहिए। बेटी पर अपना कोई हक़ नहीं; वह पराया धन है।"

सो इसी बिहारी के साथ अनुराधा की शादी की बात चल रही थी। उसी के साथ फिर एक दिन शादी तै हो गई। तब जाड़ों के दिन थे। गरमियों में विवाह की तिथि पड़ी। अम्मा ने किसी को भी कोई इत्तला नहीं की। जब विवाह का एक महीना रह गया तो बिकर्ण को पत्र लिखा—"अनुराधा का विवाह बिहारी के साथ तै हो गया है। शादी की तिथि भी नियत हो गई है। वर मुझको बहुत पसन्द आया है। घर में ज़मींदारी है, फिर ज़मींदारी के भरोसे वह रहना नहीं चाहता। वह स्वयं नौकरी करेगा। उसके चाचा के बहुत ही रसूक़ हैं। निश्चय ही कहीं न कहीं कोई बड़ी नौकरी उसे मिल जायेगी। शील-स्वभाव उसका बहुत अच्छा है। रहने वाले तो घर के लोग देहात ही के हैं, पर वह शहर ही में रहता है। बड़े ठाठ से वह रहता है। उसका ठाठ-बाट देखकर कौन मुग्ध नहीं हो जायेगा ? मेरी अन्नी बड़ी सुखी हो जायेगी। परमात्मा ने उसको बड़ा सुखी घर दिया है।......"

विकर्ण ने पत्र पढ़कर उत्तर दिया। अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति का कोई भी उल्लेख नहीं किया। केवल इतना ही लिखा—"अनुराधा जहाँ भी रहे सुखी रहे, यही मेरी इच्छा और मनोकामना है।" और साथ ही अम्मा को एक १२००) का चेक भी भेज दिया।

अम्मा ने पत्र पढ़ा और रुपया पाया। उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा। विवाह की तैयारी होने लगी। हर एक काम को अम्मा स्वयं

अपने हाथों से करतीं। अम्मा ने एक वर पहले जो पाया था, उसका दुःख कभी-कभी उनके हृदय में खटकता था। सोचती थीं कि वह 'जोड़ी' अन्नी के लिए कितनी सुन्दर थी। पर क्या करें, भाग्य जो उसके विपरीत था। पर दूसरे योग्य वर ने इस कमी को पूरा कर दिया था। अम्मा को अन्नी के भाग्य पर अब भी सन्तोष था। अन्नी का व्याह एक धनी घर में हो रहा है। पति उसको सुन्दर मिला है। शिक्षित भी तो उतना ही है—चाहे थोड़ा ही कम हो। पर इससे क्या? शिक्षा तो और भी वह प्राप्त कर सकता है। शिक्षा ही मनुष्य-जीवन का क्या सब कुछ है। किसी न किसी दिन शीघ्र ही वह किसी बड़े सरकारी पद पर नियुक्त हो जायेगा! तब मेरी अन्नी के भाग्य खुल जायेंगे। अन्नी ज़रा उसकी तरफ़ जो खिंच-सी गई थी—सो उसका कोई दोष नहीं। जवानी में ऐसा होता ही है। विकर्ण का स्वभाव ही ऐसा था। जब वह अपने घर जायेगी तो सभी कुछ भूल जायेगी। और फिर जहाँ उसके एकाध बच्चा हुआ, फिर तो वह कभी विकर्ण को भूलकर भी याद न करेगी।

सोचते-सोचते अम्मा को कुछ ईर्षा हुई। जब से व्याह पक्का हुआ है, बहुधा अम्मा के दिल में ऐसे विचार उठते हैं, और डूब जाते हैं! पर अम्मा के हृदय में जो विकर्ण के प्रति स्नेह की डोरी बँध चुकी है वह नहीं टूटी। अम्मा को उस पर अब भी स्नेह है—ममता है।

विवाह का शुभ मुहूर्त जब केवल एक सप्ताह और रह गया, तो विकर्ण का पत्र आया। इस बार दो पत्र आये। एक अम्मा के नाम, एक अनुराधा के नाम। अम्मा के पत्र में इन्द्र भइया को प्रणाम था, नवतारा भाभी को नमस्ते थी, अम्मा को चरण स्पर्श था। पत्र में उसके भावी जीवन के कार्य-क्रम पर रोशनी थी। पत्र पढ़कर भइया की आँखें चमक उठीं। अम्मा से कह उठा देखा न अम्मा, मैं कहता ही था कि विकर्ण एक न एक दिन 'देश का प्राण' होगा। वह मज़दूर-क्रान्ति का व्रत लेकर उतरा है, और उस महाव्रत को निश्चय ही पूरा

करेगा। देखो, इसी लिए उसने जर्मनी की प्रोफेसरी भी त्याग दी। और अब रूस, जो कि संसार का जीवित स्वर्ग है, जा रहा है। उसका व्रत महान् है। उसकी अभिलाषायें महान् हैं।

उसके विचार और कार्य-क्रम से सभी लोग चकित थे। गम्भीर समुद्र की भाँति जो सदा शान्त रहता था, आज एकाएक उसने अपने गर्जन से संसार को चकित कर दिया। अम्मा को हर्ष हुआ—"अच्छा किया भगवान् ने जो अनुराधा का विवाह उसके साथ नहीं ठीक हो सका; नहीं तो बेचारी अनुराधा का सर्वनाश हो जाता।"

और उन्होंने दीवार पर टँगे हुए भगवान् के चित्र को सादर नमस्कार किया। पर विकर्ण के प्रति अब भी अम्मा के हृदय में ममता थी। जब इन्द्र ने अम्मा की उस प्रार्थना पर केवल इतना ही कहा था—"यह क्या कह रही हो अम्मा, विकर्ण महान् है।" तो अम्मा ने उत्तर दिया—"हाँ, वह उस जन्म का कोई महात्मा है।"

अनुराधा ने अपना पत्र खोला—पत्र के साथ एक चित्र भी था। समुद्र के किनारे खड़ा एक पथिक शून्य की ओर ताक रहा है, समुद्र की लहरें उमड़ रही हैं और उन लहरों के बीच एक नौका अधडूबी-सी थपेड़े खा रही है।

अनुराधा चुपचाप थोड़ी देर तक चित्र देखती रही, फिर पढ़ना आरम्भ किया :—

"······देवी,

और भला किस सम्बोधन से तुम्हें अब पुकारूँ? मेरी प्रार्थना है, इस नाम के लिए नाराज़ मत होना। मैं अपनी इच्छा का संवरण नहीं कर सका हूँ, इसी से तुम्हारे लिए यह नाम दे दिया है। इसी से यह पत्र लिखकर एक बार, प्रथम बार, अनाधिकार चेष्टा-सी की है। इच्छा बहुमुखी है, पर मेरे लिए यह बहुमुखता भी एक विवशता हो गई है। इसका भी कारण है···

मैंने सोचा था कि भविष्य में मेरे सुख-दुःख का उत्तरदायित्व तुम पर आयेगा ? पर ऐसा न हो सका । इतना सब जानते हुए भी आज मैं ने यह अनाधिकार चेष्टा-सी की है ।

मेरा अब तुम पर कोई अधिकार नहीं रहा । तुम पर अब दूसरे का अधिकार होने जा रहा है । दया करके तुम मुझे कह लेने दो—मुझे जी भर कर अपनी बात कहने का अधिकार प्रदान करो, जिससे अपने चिरसञ्चित दुःख को भी उसी अधिकार के साथ-साथ भूल जाऊँ ।

तुम तो मेरी कोई बात नहीं जानतीं । मेरा तुम्हारा कोई नाता-रिश्ता नहीं था, इसी से तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कोई स्थान नहीं था । पर मेरे हृदय की यह दशा तो नहीं है । वहाँ पर तुम ही तुम हो······

'तुम' शब्द का प्रयोग जो कर रहा हूँ इसका बुरा न मानना । मैं अपने आपे में नहीं हूँ । जीवन में प्रथम बार, इतनी दूर, देश-स्वदेश से दूर—बन्धु-बान्धवहीन आज चलती हुई गाड़ी पर यह पत्र लिख रहा हूँ । बाहर शीत पड़ रही है । जी चाहता है कि चुपचाप लेटा रहूँ या पहाड़ों, जङ्गलों और अंगूर के खेतों के दृश्य देखता रहूँ । और चुपचाप तुम्हारी मधुर स्मृति की छवि उन्हीं प्राकृतिक दृश्यों में देखता रहूँ, पर ऐसा करने से आज विवश हूँ ।

मुझे इस संसार ने बहुत कष्ट दिये हैं—बहुत दुखित किया है । अकेला होने के कारण उन सब निर्दय लोगों से कोई बदला नहीं ले सका हूँ और सब के दिये तिरस्कार और अपमान, सब के पदाघात और बर्बरता, सारा कष्ट चुपचाप सह लिया है । सोचा था, तुम उन सब से बदला लोगी ! असहाय और ग़रीब जानकर उन्होंने मुझको क्यों इतने कष्ट दिये ? पर आज सोचता हूँ, नहीं, प्रत्यक्ष देखता हूँ कि वे ही सत्य पर थे और मैं झूठ······!

आज से लगभग तीन साल पहले तुम मेरे सामने बैठकर शिक्षा पाती थीं और मैं तुम्हें उत्साह के नशे में सब कुछ, कम से कम समय में सिखला देना चाहता था । बहुत बड़ा सौभाग्य था मेरा वह !

देवी, मैंने सदा अपने मन में ईश्वर को निष्ठुर और अन्यायी कहा है। अपने प्रति इतने अत्याचार और अन्याय देखकर चारों ओर से ग़रीबी और तिरस्कार पाकर फिर उन्हें दयालु कहने को तबियत नहीं हुई। परन्तु तुम्हें पाकर सोचा करता था—क्या मुझसे उन्होंने छल किया था? इतनी पीर देकर जो अब अन्त में अनुकम्पा की प्रतिमा बनाकर तुम्हें मेरे सम्मुख ला दिया—यह तो निरा छल है।

पर नहीं, आज फिर अपने पुराने विश्वासों पर आ गया हूँ। अब उन्हीं पर अटल रहूँगा!

इतने दिनों तक जो मै 'अभाव' अनुभव कर के अपने हृदय का रक्त सुखाता रहा, वही सब लेकर दिन-रात जो मन में 'जीवन की अपूर्णता' की वेदना अनुभव करता रहा, आज वही सब अप्राप्य का प्रत्यक्ष रूप धारण करके सामने आ रहा है!"

पढ़ते-पढ़ते अनुराधा का दिल भर आया; पलकें गीली हो गईं। जाने क्यों इच्छा होने लगी कि फूट कर रो उठे।

आँखें पोंछ कर पुनः पढ़ने लगी।

तुम ने तो देखा ही है, मेरे रूप या सौंदर्य नहीं है। अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं हूँ। पैसा भी नही है। यह सब दुर्भाग्य की बात है। ऐसे मनुष्य पर किसे गौरव हो सकता है? पर इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है देवी, परिस्थितियों ने कुछ न करने दिया। तुम मुझ दरिद्र से घृणा न करना, केवल यही एक विनती है। इतने दिनों तक जो मारा-मारा फिरा हूँ; अब मुझे भी अपने हृदय के एक कोने में पड़ा रहने देना। उस दिन जो अनजाने में ज़बर्दस्ती मैं ने तुम्हारी अँगुलियों में अँगूठी पहिना दी थी, उस धृष्ठता के लिए क्षमा करना देवी!

इस दरिद्र पर, इस अकिंचन पर केवल इतनी दया! तुम से भी अगर 'निरादर' और ग्लानि मिले, तो फिर कैसे जीवित रह पाऊँगा! मैं जो चारों ओर से निराश्रय और निराहत हूँ……!

इस बार अनुराधा सचमुच रोने लगी । टप्-टप् करके आँखों से आँसू बहने लगे, और पढ़ा नहीं गया ।

---

## १२

अनुराधा का लग्न-संस्कार हो गया है । आज के ठीक पाँचवें रोज़ ब्याह भी हो जायेगा, तब अनुराधा दूसरे के घर चली जायेगी । अनुराधा का जब अपने मन, शरीर और आत्मा किसी पर भी अधिकार नहीं रह गया है । मनसा, वाचा, कर्मणा से वह दूसरे की पत्नी हो चुकी है ।

पर उसने अपने मन के विरुद्ध बग़ावत की, धर्म-शास्त्र का गला घोंटा, न्याय की गर्दन पर छूरी फेरी । रात्रि के गहन अंधकार में वह अपने कमरे का द्वार बन्द कर के लेट रही । नीचे अम्मा पड़ोस की औरतों के साथ मिलकर मङ्गलाचार गा रही थीं । ऊपर अनुराधा लेटी थी । धीरे से उठ कर उसने लेम्प जलाया और अपना राइटिङ्ग-पैड निकाल, कुछ लिखने बैठी पत्र लिखा :—

देवता के श्रीचरणों में—

क्या सोचकर दासी के लिए ऐसी बातें लिखी हैं ? क्यों उसके ऊपर इतने निष्ठुर हो गये ?

मैं क्या कर के अपनी भक्ति प्रकट करूँ ? देवता तो भक्त के मन की बात यों ही जान लेते हैं—देवता तो घट-घट के वासी होते हैं । फिर मेरे देवता मेरे मन की बात क्यों नहीं जान पाये ? क्यों उन्होंने दासी पर ऐसी निर्दयता की ?

तुम ने पत्र लिखते समय तनिक भी नहीं सोचा कि किसे यह पत्र लिखा जा रहा है । अनुराधा तुम्हारी जन्म-जन्म की सेविका, वह क्या इतना दुःख सह पायेगी ?

देवता, तुमने क्यों ऐसी बातें लिखीं ?......

उस दिन परिषद् में जब तुम कविता पढ़ रहे थे, तो मैं रोकर उठ आई थी। किसी भी तरह सह नहीं सकी। ऐसा लगा कि कवि ने मेरे अन्तर की बात जान ली है।

देवता, तुम दूसरों का दुःख-सुख अपनी क़लम में उतार कर सब को बता देते हो। पर अपनी अनुराधा के मन की बात ही नहीं सुन पाये ! तो तुम ने मुझसे उपहास किया है ?—और मैं क्या लिखूँ; रो रही हूँ, लिखा नहीं जाता !

बर्लिन में जिन विपद-ग्रस्त भारतीयों के लिए तुम चारों ओर से धन जुटा रहे हो, उनके लिए मेरे पास जो है उसे भेजे दे रही हूँ। दासी पर विश्वास रखना। आत्मा मेरी अब भी तुम्हारे चरणों पर लोट रही है, उसके लिए तो तुम्हें स्थान देना होगा।"—कोने में एक ओर लिखा—"यह विवाह के कङ्गन, मुझे लग्न-संस्कार में मिले हैं। इन्हें बेच कर काम चलाना।"

जिस दिन भाँवरें पड़ने को थीं, बधाई का तार आया। दूर देश में पड़े एक बन्धु-बान्धव-हीन व्यक्ति का शुभ सन्देश ! अनुराधा विक्षुब्ध हो उठी। सारे घर में मङ्गलाचार हो रहा था। ख़ुशी के गीत गाये जा रहे थे। अनुराधा पीत-वसन पहने अपने कमरे में चुपचाप लेटी थी। उसके हाथ में नीलम की अँगूठी पड़ी थी जिसका नग उसके अधरों को स्पर्श कर रहा था। आँखों से झर-झर पानी बह रहा था। चुपचाप लेटी थी अनुराधा ! कोई आ कर देखे कि वह आज क्या कर रही है; कोई आ कर पूछे कि वह क्यों आँसू बहा रही है ?

संध्या का आगमन दिन के अन्त में हुआ और सन्ध्या बीत कर रात्रि हुई। नौ बजे, फिर दस, फिर ग्यारह और फिर बारह। भाँवर की साइत आई। भाँवरें पड़ने की तैयारी होने लगी। अम्मा कार्य में अत्यन्त संलग्न थीं। उनको कुछ भी पता न था कि क्या हो रहा है। वह अपनी पुत्री के भाग्य पर प्रसन्न थीं; दामाद पर निहाल। इतना

सुशील, सुन्दर, हँसमुख और स्वस्थ दामाद बड़े भाग्य से मिलता है। उनके मुख की आकृति से सम्भव है यह बात झलकती थी कि वह विकर्ण और अपने दामाद की तुलना कर रही हैं, और साथ ही साथ अपनी विजय पर भी प्रसन्न हैं। कहाँ उस विकर्ण की तुलना 'इनसे' की जा सकती है ?

नवतारा, अनुराधा को पकड़ कर लाई मण्डप में। भाँवर पड़ने की सारी तैयारी हो चुकी है। 'पति देव' मण्डप में आकर बैठे हैं, वधू की बाट देखी जा रही है। अनुराधा के मुख पर घूँघट का पट आँसुओं से भीग रहा है। इतने समारोह हँसी-खुशी और मङ्गलगान के बीच भाँवरें पड़ीं।

विवाह हो गया। अम्मा के सिर का बोझ उतर गया। अनुराधा को सम्पन्न घर मिल गया। बिहारी को सुन्दर सी सुकुमार पत्नी मिल गई। विवाह को चार साल पूरे हो गये। चार वर्ष पूरे हो चुके, सम्भव है एक आध महीना ही कम हो !

पति का नाम बिहारी है। एम० ए० पास है। सुन्दर है, देखने सुनने में। कानपुर की किसी मिल में काम करते हैं। डेढ़ सौ या पौने दो सौ रुपया मासिक वेतन मिलता है। खाने-पीने का सामान गाँव ही से आता है। फ़तेहपुर में उनकी ज़मींदारी है। गाँव में पिता हैं, वे ज़मींदारी का सारा काम देखते हैं; बिहारी पर उनका बड़ा दुलार है। प्रयाग में चाचा डाक्टर हैं। बहुत अच्छी उनकी डाक्टरी चलती है। वह भी बिहारी को बहुत प्यार करते हैं; बिहारी उनके कुल का भूषण जो है !

बिहारी समस्त शोक-दुःख और सांसारिक चिंताओं से दूर, कानपुर ही में रह रहा है। उसका जीवन बड़े सुख से व्यतीत हो रहा है। अनुराधा भी कानपुर ही में रहती है। बिहारी उसको एक मिनट के लिए भी अपने से अलग नहीं करना चाहता; नहीं करता है।

जीवन के सुनहले दिन सन्ध्या के सतरँगे बादलों के समान जल्दी-

जल्दी भागते चले जाते हैं। बिहारी के विवाह को पूरे चार वर्ष बीत गये; पर दिन जाते देर नहीं लगी। मानो वह अभी कल ही की तो बात है। इसी सुख-दुःख का तो नाम जीवन है।

---

## १४

उस अभागे मनुष्य की बात क्या कहें कि जिसने जीवन में कभी दुलार-प्यार, मान-गौरव, आराम और सुख पाया ही नहीं।

जो चुपचाप सबकी बातें, सह कर, तिरस्कार और विद्रुप-उपहास अपने सर पर रख कर कहता है—"मैं इसी के योग्य हूँ, मैं ही सबसे पतित हूँ, सबसे गया-बीता हूँ, सबसे बुरा हूँ।"

जिसने अपनी ज़िन्दगी में यह कभी जाना ही नहीं कि सुख कैसा होता है और उसकी क्या ज़िन्दगी है? उस पत्रिका से सरकार ने ज़मानत माँग ली। पत्रिका बन्द हो गई। तब से यहीं कहीं, मारा-मारा घूमता है। स्वतन्त्र रूप से पत्रपत्रिकाओं में लेख लिखा करता है। किसी तरह गुज़र हो जाती है—यही बहुत है।

जिसके लिए कहीं आदर और स्नेह की पुकार नहीं है। जो सब ओर से अधूरा है। माता-पिता नहीं हैं। बन्धु-बान्धव नहीं है। जिसकी ओर से सभी उदासीन हैं, पर जो सब की ओर से उदासीन नहीं है, जो सब का है। बड़ी कठिनाई से एम० ए० पास किया; फिर डाक्टर हुआ और जर्मनी गया। अब वहाँ से आकर आवारों की-सी ज़िन्दगी बिताता है। जिसके चाल-ढाल पर लोग अँगुली उठाते हैं। सरकार की नज़रों में जो बाग़ी है। मज़दूरों के मुहल्लों में जो दिन-रात चक्कर लगाया करता है। पीठ-पीछे लोग जिसको गालियाँ देते हैं। उसके और कौन है? और तो कोई नहीं।

धन, रूप, गुण—कुछ नहीं है—कुछ नहीं है!

न कभी अच्छा खाया पिया, न कभी अच्छे कपड़े ही पहिने, न

शान से सजने को मिला, न बड़े से घर में बिजली के पंखे के नीचे किसी दिन बैठने को मिला। न किसी की स्नेह-विह्वल दृष्टि ही देखी, न किसी दिन मान-गुमान करने को मिला!

कुली-बाज़ार में किराये पर छोटा-सा मकान लेकर, चार बर्तन रखकर हाथ से पकाकर, उलटी-सीधी डालकर चुपचाप अपनी खाट पर लेट रहता है। दिन भर आवारों की तरह मिलों के चक्कर लगाया करता है। मज़दूर-यूनियन में दस से चार तक आफ़िस में बैठे-बैठे क़लम चलाता रहता है। जिस दिन शरीर टूटने लगता है, तो काम से लौटकर योंही पानी पीकर पड़ रहता है। छाती में जो कभी पीर होने लगती है तो डाक्टर की दी हुई 'बेला डोना' की चार बूँदें पानी में घोलकर पी लेता है; फिर छाती के नीचे तकिया दबाकर लेट जाता है। इस अभागे आदमी की और क्या बात कहें?

और आज वही अभागा आदमी जब 'कॉटन-मिल' के पास ही फाटक के एक किनारे बाईं ओर खड़ा था तो एक सज्जन ने एक लड़के को दो-तीन तमाचे जड़ते हुए उपदेश दिया—"साले! चोर कहीं का, मोटर छूता है?" लड़का रो पड़ा, मार की पीड़ा से, पर उसकी विद्रोही आँखों ने हार नहीं मानी। तभी उस अभागे ने आकर उस दरिद्र लड़के का सिर सहलाते हुए कहा—"बेटा, रो मत! कहीं साहब लोगों की मोटर छुई जाती है।"—और पाकेट से एक इकन्नी निकालकर उसे पकड़ाते हुए फिर बोला—"लो इसकी मिठाई खाना और फिर किसी की मोटर अब मत छूना!"

वह सज्जन बरस पड़े—"जनाब आप ही लोग इन चोर सालों को बढ़ावा देते हैं; नहीं तो मजाल है इन सालों की कि ज़रा भी शरारत करें।"

उस अभागे ने चुपचाप जैसे सब कुछ सुन लिया। बोला कुछ नहीं। केवल एक बार गर्दन फिरा कर उनकी ओर ताक दिया और फिर मुँह फेर मिल की चिमनी की ओर देखने लगा।

सन्ध्या को घर आकर जब बिहारी ने सारी कहानी अनुराधा को सुनाई, किस प्रकार उस चोर-लड़के ने साहब की मोटर छू ली और कैसे उस पाजी आदमी ने उस चोर-लड़के को इकन्नी देकर उसका अपमान किया, तो अनुराधा को भी सचमुच ही उस अभागे पर घृणा हो आई।

कुछ जल-पान के पश्चात् बिहारी छड़ी लेकर टहलने चला गया। अनुराधा खाना बनाने का प्रबन्ध करने लगी। इतने ही में चम्पा, उसकी नौकरानी आ गई। चम्पा की उम्र भी अधिक नहीं है। यही कोई बाईस-तेईस साल की होगी।

"आज इस समय कैसे आई हो चम्पा ?"—अनुराधा ने प्रश्न किया।

"तुम्हारे ही पड़ोस में तो काम करती हूँ बहू जी !"

"कहाँ ?"

"तुम्हारे बग़ल में।"

"कब से ?"

"चार-चाँच रोज़ से।"

"कौन रहते हैं ?"

"एक बाबू हैं ?"

"अच्छा !"

"हाँ, अभी तक आये ही नहीं।"—ज़रा रुककर बोली—"अकेले हैं न, इसी से कोई फ़िकर नहीं रहती।"

"आलू छीलते-छीलते अनुराधा बोली—"हूँ"

"लाओ मैं मसाला पीस दूँ, बहू जी !"—चम्पा ने आग्रह किया। और मसाला पीसते-पीसते बोली—"चुप बहुत रहते हैं, मैं पूछूँ कुछ तभी बोलेंगे, नहीं तो कभी नहीं बोलेंगे। बिल्कुल गऊ आदमी हैं।

अनुराधा आलू छील कर बैठी थी। यह सुनकर जाने क्यों उसे अच्छा लगा। जैसे बहुत पुरानी कोई स्मृति जाग उठी। चुपचाप रहना,

नौकरानी कुछ कहे-कुछ पूछे तो बोल देना। किसी से नाराज़ न होना, डाँटना-डपटना नहीं; किसी से यारी दोस्ती नहीं, नाता-रिश्ता नहीं, लड़ाई-झगड़ा नहीं, कहीं आमदरफ्त नहीं, चुपचाप रहना, नौकरानी कुछ कहे-कुछ पूछे तो बोल देना !

अनुराधा ठोढ़ी के नीचे बायें हाथ की टेक दिये बैठी नौकरानी की बात सुन रही थी। सुनकर जाने क्यों उसे अच्छा लगा, वह पूछने लगी—"घर वाली है ? उसे ले क्यों नहीं आते ?"

नौकरानी बोली—"जाने है कि नहीं।"

अनुराधा ने हाथ ठोड़ी के नीचे से हटा कर, तनिक अँगड़ाई लेकर कहा—"पूछना।"

"पूछ लूँगी !"—नौकरानी ने उठते-उठते कहा—"बहू जी देर करा दी तुम ने आज ! बाबू जी अब आते ही होंगे, मुझे तो डर लगता है !"—खड़ी होकर हँसकर तनिक भवें चढ़ाकर कहा—"रोज़ मुझे बातों में लगा लेती हो; आज इतनी अबेर हो गई, चौका-चूल्हा यों ही पड़ा है, आज बाबू जी ज़रूर मुझसे नाराज़ होंगे !"

अनुराधा ने मुस्कराकर कहा—"नहीं होंगे नाराज़; तुम जल्दी से जा कर चौका पोत देना। मैं अभी जल्दी से बनाये लेती हूँ।"

पति ने कमीज़ के ऊपर शाल डालते-डालते कहा—"कुंडी लगा लेना भीतर से। सो रहना; मैं आकर जगा लूँगा। बेकार जागती मत रहना !"

अनुराधा ने कोई उत्तर नहीं दिया। पान की तश्तरी लाकर सामने धर दी। पति ने बीड़ा लेकर मुँह में रख लिया; फिर ज़र्दा की एक चुटकी लेते-लेते बोला—"मैं देख आऊँ, फ़िल्म अगर वाक़ई अच्छी हुई तो तुम्हें फिर ले चलेंगे परसों मैटिनी में। आज तो बड़ा रश होगा !"

अनुराधा ने फिर कुछ नहीं कहा। बिहारी जब सिनेमा देखने

चले गये तो वह अपने काम में लग गई। भोजन किया; चौके में सफ़ाई की, सामान उठा कर रखा। बिस्तर बिछाया; सुराही में पानी भर कर धरा; फिर लालटेन लेकर ज़ीने के नीचे के किवाड़ों पर साँकल चढ़ा आई।

मार्च समाप्त हो रहा था। गरमी तब असहनीय नहीं पड़ रही थी। आँगन में अपने पलँग पर लेटी अनुराधा आसमान की ओर ताक रही थी। उसे इस तरह चुपचाप आकाश की ओर देखना बड़ा अच्छा लगता है। वह उधर ध्रुवतारा है; वे सप्तऋषी हैं; यह बीच में आकाश गंगा है। अनुराधा सब को पहिचानती है; सब को अपने छोटेपन से इसी तरह देखती आई है।

हवा बहुत धीरे-धीरे डोल रही थी—पछियावा चल रहा था। अनुराधा को साँस में कुछ कड़वाहट-सी लगी। देखा तो, मुँडेरी के उस पार से धुआँ उठता चला आ रहा है।

किसने बेवक्त आग सुलगाई है? धीरे-धीरे उसकी छत पर धुआँ भरने लगा।

एक ही मकान के दो हिस्से कर दिये गये हैं। दोनों के बीच में सिर से बालिश्त भर ऊँची दीवार है। दोनों के दरवाजे, छज्जे, बरामदे और ज़ीने एक ही ओर हैं। एक ही लाइन में, एक ही राह पर दोनों घर हैं। उसका नम्बर १३ है, इसका १४ है, दोनों किराये पर हैं। अनुराधा को यहाँ उठकर आये तीन-चार महीने हुए; दूसरा किरायेदार अभी इसी सप्ताह में आकर बसा है। एक ही नौकरानी दोनों घरों में काम करती है।

आज दिन में वही चम्पा बतला रही थी कि यह अपने पड़ोस के बाबू......सहसा अनुराधा को याद हो आई—चुप बहुत रहते हैं; बिल्कुल गऊ आदमी हैं!.........

क्या वे बेवक्त खाना बना रहे हैं? इसी सटे घर से तो धुआँ आ

रहा है। अनुराधा को जाने क्यों उत्कण्ठा हुई। एक बार देखे तो उन्हें, कैसे हैं, कैसे क्या कर रहे हैं ?

जल्दी से लोहे की कुर्सी उठा ली और लाकर उस दीवार के किनारे रख दी। उस पर खड़ी हो, दीवार पकड़ कर छिपी-छिपी देखने लगी। बरामदे के उस किनारे पर, अँगीठी में कोयले भर कर कोई बैठा पंखे से उन्हें सुलगा रहा था। पास में एक छोटी-सी बटलोई और थाली में तरकारी कटी धरी थी। बरामदा धुएँ से भरा था।

अनुराधा को जाने कैसा लगा। कोयले सुलगाने वाले की शकल रात में इतनी दूर से साफ़ नहीं दीख सकी। वह खड़ी-खड़ी उसका काम देखने लगी—सूना घर, अकेले आदमी। घर में केवल एक छोटी माडल वाली लालटेन। रात में, गरमी में, अँगीठी सुलगा कर खाना बनाने बैठे हैं !

अनुराधा को जाने कैसा लगा।

सिनेमा देखकर जब पति लौटे तो वह जाग रही थी। उन्हें आश्चर्य हुआ, बोले—"अभी तक तुम सोई नहीं ?"

अनुराधा ने संक्षेप में कहा—"नींद ही नहीं आई।"

"क्या करती रहीं ?"—बिहारी ने पलँग पर लेट कर पूछा।

अनुराधा तनिक-सा हँसकर बोली—"कुछ नहीं, यों ही लेटी रही।"

फिर अनुराधा, पति के सो जाने के पश्चात्, कान लगा कर सुनती रही—कुछ खट-खुट ! क्या हो रहा है पड़ोस में ? कुछ नहीं जान सकी।

बहुत देर तक वह यों ही जागती रही। जब रात में घोर नीरवता छा गई और बहुत दूर पर बारह की ग़ज़ल सुन पड़ी तो वह कुछ झपकी सी ले रही थी.........!

सबेरे बहुत देर से सोकर उठी। चम्पा ने आकर चौका-बरतन साफ़ किया। बिहारी बैठे हजामत बना रहे थे। अनुराधा चम्पा से कुछ बात करना चाहती थी, पर सामने जो बिहारी बैठे थे !

अनुराधा ने चम्पा को लक्ष्य करके कहा—"चम्पा, जरा चूल्हा जला दो, बाबू जी के लिए कुछ नाश्ता बना दूँ—आज बड़ी अबेर हो गई है।"

चम्पा ने उत्तर दिया—"अभी बाबू जी के यहाँ भी करना है, बहू जी !"

"तो कर लेना वहाँ भी, यहाँ अधिक देर नहीं लगेगी।"

सो चम्पा चूल्हा सुलगाने लगी; और ठीक उसी समय कोई बाहर से आ गया, बाबू जी को बुलाने। बिहारी बाहर चले गये। अनुराधा को जैसे अवसर मिला। चम्पा के पास जाकर बोली—"दोपहर को तो आओगी न ?"

"हाँ, आ जाऊँगी।"

"ज़रूर !"

"अच्छा।"

---

## १५

उसी दिन संध्या को बिहारी के कोई परिचित मित्र आये थे। उनके लिए पकवान और दही-बड़े बनाये जा रहे थे। अनुराधा बहुत ही स्वादिष्ट खाना बनाती है। दही-बड़े बनाने में तो वह विशेषज्ञ है। पति ने कभी मित्र से कहा था। मित्र ने आकर खास फरमाइश की थी।

नौकरानी भी लगी थी। मसाले पीस कर दही मथ रही थी। बीच ही में वह कहने लगी—"बहू जी, मेरी सोची ही बात आखिर ठीक निकली।"

"क्या ?"—अनुराधा ने मेवा बीनते-बीनते पूछा।

"उनकी घर वाली नहीं है।"

अनुराधा ने यह नहीं पूछा कि "किनकी ?" उसने यह पूछा—"क्या ब्याह नहीं किया है ?"—फिर ज़रा उसकी ओर ताक कर बोली—"और दुपहर में क्यों नहीं आई ?"

नौकरानी बोली—"नहीं, ब्याह नहीं किया है······"

"क्यों नहीं किया ?"

"क्या जानें !"

अनुराधा बोली—"बेचारे बड़ा दुःख उठाते हैं। भला आदमी से खाना बन सकता है ? बहुत तकलीफ़ उठाते हैं !"

रात में जो वह इतनी देर तक देखती रही, उसकी तनिक भी चर्चा नौकरानी से नहीं की।

नौकरानी कहने लगी—"मैं क्या करूँ ? उनसे दो-तीन बार कह चुकी हूँ कि साग-तरकारी मैं बना दूँ; और अगर परावठे खायें तो परावठे बना दूँ। लेकिन उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा, हर बार केवल हँस दिये थे !"

अनुराधा बोली—"तुम बना दिया करो न ! इतने में क्या थक जाओगी ?"

नौकरानी ने काम रोक कर कहा—"लो ! तुम भी अजीब हो बहू जी ! अरे मैं तो कितनी बार कह चुकी हूँ कि··········।"

अनुराधा ने बात काट कर कहा—"तो तुम अब खुद ही बना दिया करो। शाक-तरकारी उबाल दिया करो, आटा गूँध दिया करो, आकर बस रोटी बना लिया करेंगे।"—फिर सिर उठा कर पूछा—"दही हो गया तैयार ? इधर ले आओ।"

चम्पा ने कूँड़ी सामने को सरका दी।

रात तक अनुराधा यों ही लगी रही। बेशुमार चीज़ें बनी थीं। पान खाकर जब वे दोनों बने चले गये तो बाहर आँगन में आकर अनुराधा ने धोती के आँचल से अपना मुँह पोंछा। फिर आँगन में टहलते-टहलते पंखे से बयार करने लगी। तब उसे सहसा ध्यान हो

आया कल का कि आज तो धुआँ नहीं उठ रहा है। क्या कर रहे हैं ? कुरसी वहीं पड़ी थी, सो उठा ले जाकर छत पर पहुँची। छत पर मुँड़ेरी के पास कुरसी रखकर उसपर खड़ी हो गई और चुपके-चुपके देखने लगी। समस्त घर में अन्धकार छाया था। हाँ, अँधेरा घना नहीं था, हल्का था। घर में खाना नहीं बन रहा था। आँगन में सवा रुपये वाली खाट पर, सिरहाने बिस्तर धरे, हलके अँधेरे में, वह चुपचाप लेटा था। दोनों हाथ बाँधकर धर लिये थे माथे पर और चुपचाप लेटा था।

अनुराधा तनिक-तनिक सिर उठाकर छिपी-छिपी देखने लगी।

सहसा वह उठकर बैठ गया। अनुराधा झट से छिप गई। वह भीतर कमरे में गया। लालटेन जलाई और स्टूल ले आकर सामने उसे रखकर खाट पर बैठ गया। स्टूल पर लालटेन रख दी। खाट के नीचे से एक शीशी उठा ली, लालटेन की रोशनी तेज़ की और स्टूल पर रखे पानी के गिलास में एक-एक बूँद गिनकर दवा डालने लगा।

अब देखा! लालटेन की तेज़ रोशनी चेहरे पर पड़ी तो चेहरा साफ़-साफ़ दीखा, अब भली प्रकार देखा। अनुराधा को चक्कर-सा आने लगा। वह धीरे से कुरसी से उतर आई।

पति अपने मित्र को लेकर टहलने गये थे, शायद फूलबाग़ की ओर या चौक मूलगंज। सो वह अभी आये नही थे, अनुराधा से कह गये थे कि खाना खा लेना। पर अनुराधा ने खाना नहीं खाया। भीतर की चौखट पर, घुटनों पर मुंह रखे उदास-सी बैठी थी। जाने बैठी-बैठी क्या सोच रही थी। जब पति आये तो किवाड़ खोलकर चारपाई पर लेट रही।

बिहारी ने पूछा—"खाना खा लिया ?"

केवल 'हू' कर दिया, और मुँह ढककर लेट रही।

दूसरे दिन सबेरे उदास-सी बैठी थी। रात को वह अच्छी तरह सो भी नहीं सकी थी। जाने-बैठी-बैठी क्या सोच रही थी। नौकरानी आ गई। अनुराधा ने चौंक कर कहा—"बड़ी जल्दी आ गई आज।"

चम्पा उसके पास आ बैठी। उसकी उम्र भी ज्यादा नहीं है; अनुराधा से बातें करते उसे बड़ा अच्छा लगता है।

बैठकर बोली—"आज उन बाबू के काम नहीं है।"

अनुराधा ने तनिक धीमे स्वर में पूछा—"क्यों?"

"खाना नहीं बनाया रात, बर्तन वैसे ही धुले रखे हैं।"

"क्यों नहीं बनाया खाना?"

"उनकी तबियत ठीक नहीं थी। दर्द होने लगा था।"

"दर्द!"—अनुराधा ने तनिक अधीर होकर पूछा—"दर्द कहाँ होता है?"—और उसकी आँखों में आँसू डबडबा आये। चुपचाप उन्हें पी गई। नौकरानी नहीं देख पाई।

नौकरानी बोली—"छाती में। उन्हें जाने क्या बीमारी है; दसवें-बारहवें छाती दुखने लगती है, रात-रात भर तकिया दबाये गुम-सुम पड़े रहते हैं।"

अनुराधा ने कुछ नहीं कहा। नौकरानी उठ कर काम करने लगी। बहुत देर हो गई, तो भी अनुराधा उसी तरह एक भाव से बैठी रही। बार-बार आँसू आँखों में उमड़ आते थे और हर बार अनुराधा उन्हें पी जाती थी।

नौकरानी ने देख कर कहा—"उठो न बहू जी! आठ बजने आये; उठो, नहाओ-धोओ। खाना-वाना भी बनेगा या नहीं आज?"

"छुट्टी है।"

"तो क्या नहाओ-धोओगी भी नहीं?"

तब जा कर अनुराधा उठी। गुसलखाने के भीतर जा कर स्नान किया। और गीली धोती तार पर फैला कर तौलिया से मुंह पोंछती-पोंछती कहने लगी—"छाती में दर्द होता है तो उसका इलाज क्यों नहीं करते?"

नौकरानी बोली—"उन्हें अपने ऊपर रहम नहीं है। दूसरे को दुःख न हो, अपना सब कुछ सह लेंगे। मैं नौकरानी, कोई इधर-उधर

का काम कर दूं तो मुझी से कहने लगते हैं—'अरे, तुम क्यों तकलीफ़ उठाती हो!' मर जाती हूँ मैं तो, ऐसा आदमी मैंने तो कोई देखा नहीं !"

अनुराधा कुछ कहने जा रही थी कि बाहर का द्वार खुला और बिहारी छड़ी लिये बाहर से आये। वह बड़े लड़के घूमने चले गये थे। अनुराधा फिर कुछ नहीं बोली। बिहारी ने अनुराधा को संकेत कर के कहा—"सुनती हो जी,......"

अनुराधा ने घूम कर उत्तर दिया—"क्या ?"

"हम आज अपने मित्रों के साथ 'उन्नाव' ट्रिप पर जा रहे हैं। तुम खा लेना, हमारा इन्तज़ार न करना। और हाँ, हम लगभग संध्या तक आयेंगे।"

"अच्छा !"—अनुराधा ने संक्षेप-सा उत्तर दिया।

साढ़े आठ बजे की गाड़ी से जब वह 'उन्नाव' चले गये तो अनुराधा ने रात का बहुत-सा सामान नौकरानी को दिया। फिर वह आँगन में खड़ी हो कर, दूसरी ओर मुँह कर के कहने लगी—"तुम से एक बात पूछने को थी।"

"क्या बात थी ? पूछो न !"—नौकरानी बर्तन सँभालती-सँभालती बोली।

"भूल गई !"—ज़रा शर्मा कर बोली।

"क्या इस घर वाले बाबू जी की कोई बात थी ?"

"हाँ-हाँ !"—अनुराधा ने सिर हिला कर कहा—"ठीक, इन्हीं की बात थी।"

"क्या बात थी ?"

अनुराधा ने लजा कर पूछा—"तुम उनका नाम जानती हो ?"

"नाम ?"

"हाँ, कभी किसी के मुंह से सुना नहीं ?"—अनुराधा ने ऊपरी बनावट दिखाकर कहा।

नौकरानी सोचकर बोली—"सुना तो था, उनके कोई मिलने वाले

आये थे, उन्हीं के मुँह से सुना था—विकर्ण-विकर्ण कहते थे। क्यों, क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, यों ही पूछती थी।

नौकरानी सामान लेकर चली गई। अनुराधा चौके में घुसी। अपने लिए खाना परोसने को धीरे से थाली खींची, फिर उसे छोड़ दी। उसी तरह उठ आई, पानी भी नहीं पिया। भीतर आकर खाट पर पड़ रही और मन ही मन कहा—'वे ही हैं, निश्चय वे ही हैं। कितना अन्तर हो गया है चार साल में ! कोई पहिचान नहीं सकता कि चार साल पहिले के विकर्ण ये ही हैं। हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गये हैं ?

लेटे-लेटे अनुराधा को जाने क्या याद आने लगा। पहिले दुःख मनाती रही, फिर अपने आप आँखों में पानी भर आया, फिर टपटप करके आँसू गिरने लगे तकिये पर। जाने कौन उसके कलेजे को निकाले ले रहा था !

बिहारी का पूरा अस्सी बीघे का बड़ा भारी बाग़ था। सभी पेड़ थे उसमें—आम, जामुन, कटहल, नींबू। दो पेड़ आँवले के भी थे उसमें। बहुत बड़े-बड़े आँवले आते थे उन पर ! पिता गाँव ही में थे। वह आँवले तुड़वाकर, अचार और मुरब्बे डलवाकर दो-दो, चार-चार मटके भिजवा देते थे। इतना खर्च तो हो न पाता था। मुरब्बा बिहारी को पसन्द था; अचार कुछ इधर-उधर बाँट-बूँट देते थे। कुछ थोड़ा बहुत काम में आ जाता था।

सन्ध्या को जब बिहारी 'ट्रिप' से वापस आया; तो उसी दिन साँझ को गाँव से बैलगाड़ी आई। दो नौकर साथ आये। बहुत-सा सामान आया था—गेहूँ, चने, घी, अचार, मुरब्बा, ईंधन।

अनुराधा ने उठकर रसोई बनाई। पति को भोजन कराया, फिर उन नौकरों को खिलाया-पिलाया। अपना उस बेला भी ब्यालू नहीं किया। एक गिलास पानी पी लिया और पड़ रही सिर देके। कहीं

अथाह जल में विलीन हो जाना चाहती थी या उड़ जाना चाहती थी सितारों से ऊपर जहाँ तक जा पाये !

दोनों नौकर बाहर दरवाजे पर सो रहे थे। बिहारी अपनी मसहरी में लेटे थे। रात का करुण सन्नाटा छाया था और आसमान से चाँदनी गिर रही थी सब ओर चुपचाप-निःशब्द। करवट लेकर अनुराधा ने धीरे से एक गहरी साँस खींची। बिहारी उस समय जाग गये थे, चौंक कर पूछा—"क्यों, तुम्हारी तबियत क्या कुछ खराब है ?"

अनुराधा ने धीरे से कहा—"हाँ, आज तनिक सर-दर्द होने लगा है।"

बिहारी ने कहा—"बाम लगा लो।"

"नहीं, ऐसा दर्द नहीं है।"—अनुराधा ने शान्त स्वर से कहा।

बिहारी करवट बदल कर बोले—"तुम ने नाहक इतनी मेहनत की; नौकरों को आटा-दाल दे देती, खुद बना लेते, साले ढाई-ढाई सेर तो खाते हैं ! इतनी देर चूल्हे के पास रहीं, इसी से सर दर्द कर रहा है।"

अनुराधा चुप रही। बिहारी थोड़ी देर जागते रहे, फिर सो गये, खुर्राटे लेने लगे। पर अनुराधा की आँख न झँपी। आँखों से गरम-गरम आँसू बहते रहे और तकिया भीगती रही। मुँह से कुछ आवाज़ न होने दी। पर उसके कलेजे के भीतर कितने करुण भरे स्वर चिल्ला रहे थे; और अनुराधा उन्हें रोकने में असमर्थ थी। किसी भी तरह उन्हें चुप न कर सकी !

ऐसा क्या हुआ जो उसने तीन बेला खाना न खाया और बार-बार मुँह दबा कर रोई ?

और अब ऐसी शान्ति से भरी चाँदनी रात में क्यों सहस्त्र तारों को जगा कर 'पीर की रागनी' छेड़ी है ?—आखिर उसे हुआ क्या है ?

कौन जवाब दे !

---

# १६

हरिपुर में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। कानपुर मज़दूर-सभा की ओर से मज़दूरों का अर्द्ध साप्ताहिक पत्र 'लाल तारा' निकलता था और साथ ही साथ मज़दूर-वर्ग में चेतना उत्पन्न करने के लिए मजदूर-साहित्य के प्रकाशन की योजना की गई थी। पत्र का सम्पादन विकर्ण ही करता था, पर 'डिक्लेरेशन' किसी दूसरे के नाम से दाखिल था। प्रकाशन का सारा भार भी विकर्ण ही के ऊपर था। हाँ, पैसे-रुपये जो इसमें लगे थे और जिनके पैसे-रुपये पर यह प्रकाशन-गृह खड़ा किया गया था, वह पूँजीवादी वर्ग के कांग्रेस नेता थे। उनके सम्मुख श्रेणी-चेतना की समस्या रख कर इसकी स्थापना नहीं की गई थी उनको तो यह समझाया गया था कि राजनीतिक चेतना उत्पन्न करके जनमत को अपने साथ लेना है जिससे कि किसी भी चुनाव में हम विजय पा सकें। इसके लिए, यह भी आवश्यक है कि हम ज़रा प्रगतिवादी और अग्रगामी रहें, पुराने, दक़ियानूसी ढंग के कांग्रेस-जन नहीं। हाँ, तो कहने का तात्पर्य यह कि हमारे 'लाल-तारा' कार्यालय का भी प्रकाशन जा रहा था। मैनेजिंग डायरेक्टर ने कहा—"विकर्ण बाबू, तुम भी चले जाओ। आखिर काँग्रेस में तो तुम शरीक होगे ही। इसकी भी सारी देख-भाल तुम्हीं करना। यह लोग गैर ज़िम्मेदार आदमी हैं, इन पर निगाह रखना, बिक्री का ढङ्ग बताना और कांग्रेस भी देखना। बोलो क्या राय है?"

विकर्ण ने उत्तर दिया—"कोई हर्ज नहीं है।"

शाम को यूनियन से लौटकर तैयारी आरम्भ कर दी। रात को ढाई-बजे की गाड़ी से जाना था। फिर मेल-द्वारा यात्रा थी। सो विकर्ण बिस्तर लपेट रहा था। नौकरानी चौखट पर आकर बोली—"बाबू जी!"

"हाँ, कहो, क्या है?"

"देखिए, बहू जी ने तुम्हारे लिए एक चीज़ भेजी है !"

विकर्ण ने चकित भाव से उसकी ओर सिर उठा दिया।

नौकरानी बोली—"···अरे ये जो तुम्हारे पड़ोस में रहती हैं, उनने······!"

विकर्ण ने चकित भाव से पूछा—"क्या है ?"

"मुरब्बा है आँवले का, ले लो बाबू जी, उनने बड़े आदर से दिया है !"

विकर्ण को बहुत आश्चर्य लगा।

नौकरानी उसी स्वर में कहने लगी—"तुम्हारी छाती में पीर होने लगती है, मैंने सुनाया था सो उन्होंने कहा है, बाबू जी, कि—यह मुरब्बा बहुत फ़ायदा करता है इस बीमारी में। कहाँ रख दूँ ?"

विकर्ण ने अचम्भित होकर कहा—"रख दो इस आलमारी में !"

नौकरानी ने शीशे का 'जार' सँभालकर रख दिया और पूछा—"क्या कहीं जा रहे हो बाबू जी ?"

"हाँ !" विकर्ण ने कहा—"मैं हरिपुरा कांग्रेस जा रहा हूँ, तुम यह ताली लो, बर्तन साफ़ कर देना और ताली अपने पास रख लेना।"

"कब तक लौटोगे ?"

विकर्ण ने डोरी लपेटते हुए कहा—"यही, आठ-नौ रोज़ लगेंगे।"

गाड़ी ढाई बजे रात को छूटती है। पर इस से क्या, सामान अभी से क्यों ठीक किया, यह बात असंगत नहीं जान पड़ती। उस दिन रात भर उसे आराम करने को नहीं मिला। बाजार से नानबाई की दूकान से रोटी और प्याज़ खा कर सन्तोष कर लिया। सारी रात, लगभग दो बजे तक, जब तक कि सारा सामान बँध नहीं गया, विकर्ण दफ्तर में बैठा 'लाल-तारा' के प्रकाशक की सभी पुस्तकें, जो बिक्री के लिए जानी थीं, साथियों की मदद से बाँधता रहा। सामान सब ठीक कर के तब स्टेशन को रवाना हुआ।

दस मिनट रुक कर 'मेल' छूट चला। ट्रेन में खचाखच भीड़

भरी थी। बैठने की कहीं जगह भी न थी। बहुत से लोग लेटे सो रहे थे। विकर्ण भी चुपचाप सामान रखने की जगह पर चढ़ गया। अपनी दरी उसी पर बिछा कर लेट रहा। ऊपर लेटे हुए विकर्ण ने छत की ओर देखते-देखते सोचा—कौन हैं वे जिन्हें मेरा इतना ध्यान हुआ है ? शायद कोई उदार हों—बड़े हृदय की कोई बहुत बड़े घर की कुलीन बेटी हैं। हमेशा गरीबों पर, असहायों पर दया करती हैं। बहुत कोमल हृदय हैं। दूसरों का दुःख नहीं देख सकतीं।...

कितने दिनों से, कितने वर्षों से यह छाती में पीर हो रही है। किसी ने कभी नहीं पूछा। उन्होंने नौकरानी से सुन पाकर ही मेरे लिए इतना मुरब्बा भेज दिया !—जाने कितनी दया-माया है उनके हृदय में...

मैंने तो कभी उन्हें देखा भी नहीं, देखता तो अवश्य ही प्रणाम करता, कहता—"बहिन जी, मैं बहुत अकिंचन हूँ, मेरा अपना इस संसार में कोई नहीं है !..."

सोचता-सोचता वह सो गया। गाड़ी उड़ती चली गई। बहुत देर में आँख खुली। कोई बड़ा स्टेशन आ गया था। विकर्ण करवट बदल कर देखने लगा। सुबह हो चुकी थी। चारों ओर चहल-पहल मची थी। जबलपुर का था वह स्टेशन।

सामने की सीट पर एक दम्पति जोड़ा बैठा था। पति जलपान कर रहे थे। पत्नी सामने बैठी थीं। हाथ बढ़ा कर गिलास छूने लगी और चौंक कर बोलीं—"तुम ने बरफ़ डाला है पानी में ?"

पति ने खाते-खाते हँस कर कहा—"हाँ, थोड़ा-सा !"

पत्नी ने तनिक भवें चढ़ा कर अनुशासन भरे स्वर में कहा—"तुम आखिर मानते क्यों नहीं हो ? कल भी मना करते-करते पी लिया; अब फिर बरफ़ डाल लिया पानी में !"

पति मुस्कराने लगे।

पत्नी ने उसी तरह नाराज़ होकर कहा—"नहीं, यह नहीं होने

दूँगी। मैं तुम्हें बीमार नहीं बनने दूँगी। बरफ़ इतना नुकसान करता है, तुम्हें तनिक भी परवाह नहीं!"

यह कह कर उसने गिलास उठा लिया और खिड़की के बाहर फेंकने लगी।

पति ने हाथ उठा कर कहा—"अरे, तो फेंकती क्यों हो, तुम्हीं पी लेना।"

एक क्षण के लिए पत्नी रुकी, फिर उसने यह कहकर वह बरफ़ का पानी फेंक ही दिया—"मैं नहीं पीती इसे।"

विकर्ण ने करवट बदल ली। ओह, वे बहिन जी………!

बाँस के बने उस विशाल नगर में, जहाँ प्रत्येक वस्तु बाँस ही की बनी थी, जहाँ भारत के प्राण और महान-आत्मायें पधारी थीं, विकर्ण भी जा पहुँचा। विकर्ण तो तीन रोज आगे से ही पहुँच गया था। अपने यहाँ के प्रकाशन का तो प्रचार करना था न। विकर्ण के अन्दर जैसे उत्साह भर गया था। एक साथी बीमार पड़ गया। साथी की देख-भाल करना, दूकान को भी देखना और साथ ही साथ हर एक सभाओं में भी शरीक होना। इसी दौड़-धूप में विकर्ण का स्वास्थ्य भी खराब हो गया। जुकाम हुआ, जुकाम में फिर खाँसी हो गई। कई रातों सिर की पीड़ा से बेचैन रहा।

चलने लगा तो, बम्बई होता हुआ लौटा। बम्बई से बहुत से फल और कच्चे-पक्के केले खरीद लिये। साथी बोला—"यार, तुम्हारे तो बाल-बच्चे भी नहीं हैं, यह इतना सामान क्यों खरीद लिया?"

"एक बहिन जी हैं……उन्हीं के लिए ले लिया!"—स्वाभाविक स्वर में विकर्ण ने कहा।

स्टेशन पर आकर उतरा तो सूरज डूब गया था। दूसरी तालो पास थी। सामान यों ही छोड़ा और आँगन में, उसी झुटपुटे में, फलों की टोकरी और मेवे लेकर आ बैठा।

बिहारी उस समय किसी परिचित के यहाँ दावत खाने गये थे,

पुत्र-जन्म का उत्सव था। अनुराधा अकेली आँगन में लेटी कोई किताब पढ़ रही थी, जब अक्षर दीखने बन्द हो गये तो उसे रख दिया और लेटी-लेटी सोचने लगी। क्या वह विकर्ण के आने की बात सोच रही थी ?

कौन जाने ?

सहसा पड़ोस के घर में आहट पाकर अनुराधा ने लेटे-लेटे पुकारा—"चम्पा !" एक क्षण निस्तब्धता रही, फिर पुकारा—"चम्पा ......महरिन !"

तब उस ओर से एक बहुत कोमल स्वर में आवाज आई—"चम्पा नहीं है, मैं हूँ।"

अनुराधा के भीतर धक् से हो गया। खट् से उठकर बैठ गई और सिर का आँचल सँभाला। ज़बान से फिर एक भी शब्द न निकला। धीरे-धीरे साँस लेने लगी मारे हौल के। पर कलेजे के भीतर वे शब्द बजने लगे—"चम्पा नहीं है, मैं हूँ।"

विकर्ण फल छाँट रहा था। जो अधिक पक गये थे, या जो दाग़ी थे, उन्हें अलग रखा। अच्छे-अच्छे उसी नई टोकरी में रखे। दीवाल के उस पार कुछ खड़खड़ाहट-सी हुई। सिर उठाया तो देखा—ऊपर दीवाल की किनारी पर किसी का मुख है। यही शायद बहिन जी हैं।

विकर्ण ने घबरा कर देखा। पर यह क्या, वह छाया जाने क्यों बिजली की तेज़ी से अदृश्य हो गई। विकर्ण ने करुण-सी आवाज़ में कहा—"कोई नहीं है; मैं हूँ बहिन जी। अभी, इसी गाड़ी से लौटा हूँ।"

उधर से पतली-सी काँपती आवाज़ में बहिन जी ने पूछा—"क्या कांग्रेस देखने गये थे ?"

"जी !"---विकर्ण ने कहा; और फिर सिर डाले-डाले फल छाँटने लगा।

अनुराधा ने आज जाने क्यों ऐसा अपराध किया ? उसका मन बार-बार उस से पूछ रहा था—आखिर तुम हो कौन उनसे पूछने वाली। वह अँधेरे में खड़ी चुपचाप यही सोच रही थी। बिहारी के जब आने की आहट पाई तो हट आई वहाँ से। बिहारी जब ज़ीना पार करके छत के आँगन में आये तो सहसा दृष्टि पास के मकान की सब से ऊपरी छत पर पड़ी। कोई छाया-मूर्ति अँधेरे में इधर-उधर डोल रही थी। कौन है ?—बड़ी देर तक खड़े-खड़े यों ही देखते रहे, तो वह छाया अचानक लुप्त हो गई।

अनुराधा भीतर भंडार की सँभाल करने लगी थी। बिहारी ने कपड़े उतारते-उतारते कहा—"क्यों, खाना नहीं बनाया ?"

अनुराधा ने सामने आकर प्रसन्न मुख से कहा—"खाना किसके लिए बनाती ?"

"अपने लिए; तुम क्या खाओगी ?"

अनुराधा ने तनिक लजाकर कहा—"अपने लिए मुझसे खाना नहीं बनता। खा लूँगी कुछ—मुझे आज भूख नहीं है।

बिहारी मसहरी पर आ लेटे। लैम्प जल रहा था, बोले—"बुझा दो न इसे।"

अनुराधा ने कहा—"मैं ज़रा पढ़ूँगी थोड़ी देर। मसहरी के परदे गिरा दूँ ?"

"गिरा दो !"—बिहारी ने लेटे-लेटे कहा।

बिहारी सो रहे। अनुराधा पढ़ने बैठी। किताब का मुख-पृष्ठ पढ़ा, भूमिका पढ़ी, फिर चित्र देखे—बस ! घण्टे भर पश्चात् जब बिहारी ने अचानक करवट बदल कर जाग कर देखा—तो अनुराधा लेटी-लेटी पंखा झल रही थी और जाने क्या सोच रही थी।

"तुम सोई नहीं; नींद नहीं आई अभी तक ?"

अनुराधा ने चौंक कर कहा—"नहीं, मैं आज दिन में सो ली थी।"—कह कर उसने लाइट बुझा दी।

विकर्ण कई रातों का जागा था। नीचे सब गन्दा पड़ा था और गरमी अधिक लगी। ऊपर छत पर आ लेटा। बहुत देर में आँख खुली। सूरज पूरब में बहुत ऊपर चढ़ आया था। वह उठ कर बैठ गया। देही आलस्य से भरी थी। नीचे नौकरानी सफ़ाई कर रही थी, धूल उड़ रही थी बहुत बुरी तरह।

उसी समय बिहारी टहल कर लौटे। विकर्ण उसी तरह बैठा था। दोनों की दृष्टियाँ मिल गईं। बिहारी ने बड़े ग़ौर से देखा और घर के भीतर हो गये।

उस दिन रविवार था। खाना बनाने की जल्दी न थी। बिहारी बाज़ार चले गये थे। नौ के ऊपर हो रहा था। नौकरानी दोनों हाथों में सुन्दर-सी बाँस की टोकरी लिये आँगन में आ खड़ी हुई और ज़ोर से बोली—"बहू जी, लो।"

अनुराधा भीतर धीरे-धीरे गाती-गुनगुनाती कुछ काम कर रही थी—"क्या है ?"—कहती हुई बाहर दौड़ी आई।

नौकरानी उसी तरह वह सुन्दर सी टोकरी लिये खड़ी रही। खुश हो कर बोली—"लो, हमारे बाबू जी ने तुम्हारे लिए फल भेजे हैं!"

अनुराधा का मुख क्षण भर को अति उज्ज्वल हो उठा, आगे आकर टोकरी में झाँक कर हँसते हुए बोली—"इतने!"

नौकरानी ने कहा—"लो, पकड़ो तो, लिये-लिये मैं तो थक गई!"

अनुराधा ने टोकरी झट से अपने हाथों में ले ली और भीतर लाकर उसे रखते हुए, हाथ डालते-डालते बोली—"इतना खर्च क्यों कर डाला ?"

नौकरानी सामने ही आ बैठी थी, उसकी ओर देखकर मुस्करा कर बोली—"क्या-क्या है ?"

"निकालो !"—नौकरानी बोली।

तब अनुराधा एक-एक चीज़ बाहर निकाल कर रखने लगी। देखते-देखते जमीन पर फलों का ढेर हो गया।

नौकरानी बोली—"बहुत हैं बहू जी !"

"हाँ !"—अनुराधा ने सिर हिलाकर कहा—"हम-तुम मिलकर खूब खायेंगे।"

फिर वह छाँटने लगी। हरएक चीज़ को कहती—"यह तुम्हें नहीं देंगे।"

जब नौकरानी हँसने लगती तो कह देती—"अच्छा, ख़ैर थोड़ी ले लेना तुम भी !"—पर ख़ूबानी के लिए उसने साफ़ मनाकर दिया, कहा—"भई चम्पा, इसमें से मत माँगना, इसमें से तुम्हें नहीं मिलेगा !"

नौकरानी ने संतोष से कहा—"ख़ैर, इसमें से मत देना बहू जी।"

बहुत-सा फल नौकरानी को दे दिया। बाक़ी को उसी टोकरी में भरकर भीतर रख आई। तीन-चार ख़ूबानी हाथ में लिये थी; उन्हीं को बैठकर खाने लगी। नौकरानी हरी छाल के केले खा रही थी। ख़ूबानी खाते-खाते अनुराधा ने पूछा—"क्या कर रहे हैं ? खाना बना रहे हैं शायद ?"

"हाँ, खाना बना रहे हैं !"—चम्पा केला छीलते-छीलते बोली।

"क्या बना रहे हैं ?"

"पता नहीं।"

"अच्छा, पूछ लो ! वहीं से पूछ लो, दीवार के पास जाकर।"

नौकरानी ने दीवार के पास से जाकर पुकारा—"बाबू जी !"

विकर्ण ने उत्तर दिया—"क्या मुझसे कुछ कह रही हो ?"

"हाँ, बाबू जी, क्या बना रहे हो ?"

"खिचड़ी बनाई है।"

अनुराधा ने पास आकर चम्पा से धीरे से कहा—"पूछो दही खायेंगे ?"

नौकरानी ने पुकारा—"बाबू जी !"

"हाँ !"

देखो बाबू जी, बहू जी पुछवा रही हैं—दही खाओगे ? गाँव से आया है; ले आऊँ ?"

विकर्ण ने विनम्र स्वर में कहा—"दही तो मैं खाता नहीं हूँ; छाती में दर्द होने लगता है, खा लेता हूँ तो। कहना, क्षमा चाहता हूँ।"

अनुराधा का मुख एकदम करुण हो गया, धीरे से बोली—"उफ़ !"

फिर दोनों आकर बैठीं। नौकरानी कहने लगी—दही ठंडा होता है न ! ज़रूर नुक़सान करता होगा उन्हें, छाती की पीर......।"

चौंककर अनुराधा बोल उठी—"चम्पा, लो उन्हें अचार दे आओ नीबू का। अचार से खिचड़ी अच्छी लगती है।......"

नौकरानी प्याली लेकर विकर्ण के सामने आ पहुँची। वह खाकर उठ रहा था। नौकरानी को बड़ा दुख लगा। सूखी खिचड़ी। घी भी नहीं डाला, सोचा वही पैसे किसी दूसरे काम आ जायेंगे, यूनियन के काम में, मज़दूरों के काम में, पत्र के काम में। नौकरानी ने सोचा—क्या पेट भरा होगा ?

विकर्ण ने अचार देखकर कहा—"अरे !"—फिर ज़रा सोचकर बोला—"अच्छा, रख दो भीतर, फिर खा लूँगा।"

नौकरानी चली गई।

सारे घर में सुगंध फैली थी। बिहारी ने घर के भीतर पैर रखा तो मन ही मन सोचने लगा—क्या है ? देखा तो आलमारी में फलों से टोकरी भरी रखी है। उलट-पलट कर देखा।

अनुराधा चौके में थी; उसके आगे आकर पूछा—"ये फल कहाँ से आये ?"

अनुराधा के धक् से हो गया, मुख उतर गया; किसी तरह सँभल कर बोली—"पड़ोस में जो रहते हैं उन्होंने भेजे हैं।"

बिहारी ने रूखे स्वर में पूछा—"क्यों ?"

अनुराधा ने काँप कर उत्तर दिया—"मुझे क्या मालूम ?"—फिर ज़रा रुक कर बोली—"नौकरानी दे गई थी।"

बिहारी मुँह टेढ़ा कर के व्यंगात्मक हँसी हँसे और वहाँ से हटते-हटते बोले—"उँह ! जान न पहचान, बड़ी बीबी सलाम !"

अनुराधा ने चौके में एक शान्ति की साँस ली……

विकर्ण जब घर लौट कर आया तो दिन डूबने लगा था। बात यह थी कि उस दिन आफिस की भी छुट्टी थी। खाना खा कर वह फ़ौरन ही बाहर चला गया था। घूमता-घामता प्रकाशन-गृही के प्रधान अध्यक्ष के पास चला गया। पहुँचा, तो वह गले में धोती डाले टहल रहे थे। जाकर नमस्कार किया और सामने खड़ा हो गया।

वे बोले—"अरे वाह भाई, खड़े क्यों हो पहले बैठो तो।"

"जी ठीक है।"

"वाह, ठीक क्या है।"

विकर्ण चुप रहा।

वे बोले—"कब लौटे हरिपुरा से ?"

"जी, रात आया हूँ।"

"बहुत दिन लगा दिये।"

"जी, सीताराम बीमार हो गया था; और फिर बम्बई भी चला गया था !"

"सीताराम तो परसों ही आ गया था।"

"जी, मैं ज़रा 'आम-हड़ताल' के बारे में बम्बई मशविरा करने चला गया था।"

वे हँसने लगे, हँसकर बोले—हड़ताल और मज़दूरों ने तुम्हारा पिंड वहाँ भी नहीं छोड़ा !"

विकर्ण ने सिर झुका लिया।

उन्होंने कहा—"भई तुम्हारी 'लेखमाला' तो प्रकाशित हो गई

है। समाजवाद पर इतना सुन्दर किसी ने अब तक नहीं लिखा है। कल देखा तो चित्त प्रसन्न हो उठा। खूब धूम से बिकेगा यह।"

विकर्ण ने केवल इतना कहा—"यदि जनता इसकी क़द्र करे ?"

वे बोले—"भई तुम्हारी यह युक्ति अत्यन्त सत्य और तर्क पूर्ण है कि संसार के विभिन्न अंशों में समय-समय पर नये सामाजिक चलन का आरंभ हुआ है; और इसी प्रकार होगा। और किस प्रकार सारे संसार में फैलेगा। ईसा के पूर्व २००० वर्षों से लेकर ईसा के जन्म तक पृथ्वी की दक्षिणी और पूर्वी दिशा में नये सामाजिक युग और नवीन सभ्यता का उदय हुआ था। और यहाँ से बहुत दूर-दूर तक वह सभ्यता फैली थी। फिर किस प्रकार मिस्र और बेबीलोनिया इत्यादि में यह विकसित हुई। और उस युग की प्रधानता थी—धर्म! दूसरा काल रूमसागर के निकटवर्ती देशों में हुआ और वहाँ से युनान और रोम में नवीन सामाजिक युग का जन्म हुआ। इस युग की विशेषता आध्यात्मिक अनुभव है। तीसरा युग काफी महत्वपूर्ण है और इसका क्षेत्र उत्तर है —यूरोप! इस युग की विशेषता, आविष्कार और युद्ध है। चौथे युग का क्षेत्र उत्तर और पूर्व है। इस युग की विशेषता श्रेणी-संघर्ष और सम्पत्ति का एकीकरण है। इसका क्षेत्र रूस होगा और वृद्धि इसकी पूर्व में होगी जहाँ पर कि यह अपनी उच्च सीमा पर पहुँच कर संसार में फैल जायगा। ये देश होंगे भारत और चीन। लेनिन ने झूठ थोड़े ही लिखा है कि चीन और भारत के ही करोड़ों व्यक्तियों पर संसार की क्रान्ति निर्भर है!"

विकर्ण ने केवल इतना ही कहा—"यह सारी बातें इतिहास के आधार पर हैं।"

उन्होंने प्रसंग बदलते हुए कहा—"यहाँ का हाल मालूम है कि नहीं ?"

"जी, क्या ?"

"तुम्हारे मज़दूरों ने बड़ा ज़ोर बाँध रखा है; पूरी हड़ताल होने की खबर है।"

"मैं आज यूनियन जाऊँगा !"

"कहीं तुम्हें भी जेल हो गई तो !"

"सो क्या है !"

"है कैसे नहीं; हमारा तो सारा काम ही चौपट हो जायगा ! हम तुम्हें नहीं जाने देंगे।"

विकर्ण चुप रहा। भीतर ही भीतर अध्यक्ष महोदय की स्वार्थ-लिप्सा पर मुस्कराया—"तुम काँग्रेस के प्लेटफार्म से क्यों नहीं यूनियन बनाते। गांधी-मजदूर-संघ में शरीक होकर कार्य करो। कम्युनिष्ट पार्टी में शरीक होकर अपनी सारी शक्ति नष्ट कर रहे हो।"

विकर्ण चुप रहा। इसी समय नौकर ने खाना खाने की सूचना दी। वह बोले—"चलो भोजन कर लो।"

विकर्ण ने कहा—"जी, मैं खाना खाकर आया हूँ।"

अध्यक्ष भोजन करने चले गये। विकर्ण वहाँ से चला तो सीधा 'यूनियन' के कार्यालय में गया। और रास्ते में चलते-चलते अपने आप से कहने लगा—"काँग्रेस क्या मजदूरों के सवाल को हल करने वाली संस्था है ?......"

और घर आकर भी सोचता रहा। बैठ कर उन्हीं मजदूरों की बात सोचता रहा। कैसे उनका दुःख दूर हो ? कैसे पेट भर रोटी मिलेगी इन अभागों को ? केवल सूखी रोटी और दो कपड़ों के लिए भी मुसीबत है इन अभागों को !

उसके चारों ओर दुःख ही दुःख है और अभाव ही अभाव है। बोला—"उनको क्यों ? हमारे कहो ! तुम क्या उनसे बाहर हो ? वे तुम्हारे बन्धु-बान्धव हैं। अपने को उनसे अलग क्यों रखते हो ? तुम्हारे चारों ओर भी तो दुःख ही दुःख है और अभाव ही अभाव है !" विकर्ण के मन ने धीरे से साँस लेकर कहा—"सच है ! दुःख की तो

शुमार नहीं है, दुःख कौन गिने ? सुख की गिनती है।" जाने कैसे इस प्रसंग पर वह आ पहुँचा। कहने लगा—"शुरू से गिन लो। पहिले तो माँ, उसने बहुत लाड़-प्यार किया था। वह तभी मर गई। वह अगर आज ज़िन्दा होती ...!" अच्छा और आगे ?—"आगे वह बालपने का मित्र—कुमारगुप्त !" हाँ, उससे बहुत स्नेह किया था। वह दिन याद है, प्राइमरी स्कूल में जब बराबर-बराबर खड़े सब लड़कों के हाथ आगे करवा के पंडित जी बेत मार रहे थे, उस साधारण सी खता पर !" हाँ, याद है ! "जब तुम्हारी बारी आई तो उसने चुपके से तुम्हारा हाथ दाब कर अपना दूसरा हाथ बढ़ा कर पंडित जी का बेंत खा लिया था !" हाँ, याद है। वह भी ग़रीबी में मर गया। वह अगर होता—"अच्छा और ? और-और······अनुराधा ? अनुराधा क्या ? कुछ नहीं। उसने एक पत्र भेजा था। 'फिर ?'······वह पत्र अभी रखा है—लेकिन अनुराधा भी फिर नहीं मिली। अब शायद ही फिर कभी जीवन में दर्शन हो ? इतना भाग्य-बल कहाँ है ? जाने वह कहाँ होगी ? जाने कैसे होगी ? अगर एक बार भेंट होती ! क्या होता तो ?··· विकर्ण ने व्यथित होकर कहा—"उसने देवता लिखा था।"

मन पछाड़ खाकर गिर पड़ा। जाने क्यों विकर्ण की आँखों में आज आँसू आ गये ! हाय ! कोई अपना प्रिय नहीं है, कोई अपने पर प्यार ढालने वाला नहीं है !···अनुराधा !

सूट-केस में कहीं दो-तीन खद्दर की कमीज़ों के बीच वह चिट्ठी धरी थी। विकर्ण ने आँखें पोंछकर लालटेन जलाई, फिर सूट-केस खोलकर अनुराधा की वही चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा।

आँखों से आँसू बहते थे। मन पछाड़ें खाता था। हृदय चिल्ला कर रो रहा था !

---

# १७

बिहारी शाम को अनुराधा को लेकर अपने एक मित्र के यहाँ मिलने गया था। मित्र की स्त्री सुशीला और अनुराधा साथ-साथ पढ़ी थीं। सुशीला बहुत सीधी-सादी थी। पति कानपुर में वकील थे। पति के साथ ही वहीं रहती थी। कई बार अनुराधा से मिलने के लिए अनुरोध भी किया था; सो आज बिहारी ले गये थे अनुराधा को भी।

अनुराधा को सुशीला ने एक कहानी दिखलाई और कहा कि यही सुमित्रा की लिखी है, वह जो एक साल नवीं क्लास में फेल हो गई थी। पर अनुराधा ने कहानी यों ही रख दी। सुशीला बोली—"तुम अब नहीं लिखतीं दीदी ?"

अनुराधा ने जवाब नहीं दिया, केवल फीकी हँसी हँस दी।

सुशीला बोली—"गिरस्ती में पड़कर फिर बड़ी मुश्किल हो जाती है ! पढ़ना-लिखना तो आप छूट जाता है।"

अनुराधा उसका मुँह देखती रही। सुशीला कहने लगी—"विद्यालय में जब हम लोग पढ़ते थे—कितने सुन्दर दिन थे वे दिन दीदी ! मुझे तो बड़ी याद आती है !"

अनुराधा की आँखें देखते-देखते भर आईं। मुँह फेर कर जल्दी से आँसू पोंछ लिये।

फिर बातों-बातों में सुशीला बोली—"दीदी, एक बात पूछूँ ?"

"क्या ?"—अनुराधा ने धीरे से कहा।

"उनका कुछ हाल मिला ? विकर्ण बाबू का ?"

अनुराधा ने आँखें नीचे झुका लीं, फिर रुक कर धीरे से कहा—"सुशीला यह बात तुम···!"

सुशीला ने अनुराधा का हाथ पकड़ लिया और विनम्र स्वर में बोली—"दीदी, मुझसे भूल हो गई; तुम्हें उस बात का दुःख होता है; अब कभी न पूछूँगी !"

अनुराधा ने सिर झुका लिया, किसी भी तरह आँसू नहीं रोक सकी।

भोर के समय विकर्ण ने जाना कि उसकी छाती में खूब ज़ोर से दर्द हो रहा है। फिर और लेटा नहीं रहा गया। धीरे-धीरे छत पर टहलने लगा, पर दर्द तनिक भी कम नहीं हुआ।

अनुराधा उठ कर नहाने-धोने चली गई थी। विकर्ण ने उसे नहीं देखा था। न उसने एक बार भी कभी, भूलकर भी अनुराधा के घर के अन्दर देखा था। सो आज भी नहीं देखा। बिहारी देर से सोकर उठे, रात मित्र के यहाँ से देर में लौटे थे। सब लोग मिलकर 'चित्र' देखने चले गये थे। अंगड़ाई लेकर चारों ओर नज़र दौड़ाई तो छत पर पड़ोसी को खड़ा पाया। देखने लगे। पर विकर्ण ने नहीं जाना। वह टहलता ही रहा, दर्द परेशान किये था।

विकर्ण ने खाना नहीं खाया। सीधी 'यूनियन' की राह ली, बीच में डाक्टर साहब के पास होता गया। एक-दो खुराक दवा दी फ़ौरन खाने को और कई दवायें भी दे दीं। और कहा कि प्रातःकाल सूर्य की रश्मियाँ लो सीने पर।

उस समय दवा के असर से पीर कुछ कम हुई, पर घर लौटने पर छाती फिर दुखने लगी। विकर्ण ने एक पुड़िया और खाई, फिर आंगन में पड़ रहा खाट डाल कर। नौकरानी ने चूल्हा आकर देखा तो अचरज से बोली—"क्या आज खाना नहीं बना बाबू जी ?"

विकर्ण ने कहा—"बीमारी उभर आई है।

नौकरानी ने बरामदे में झाड़ू देते-देते कहा—"बाबू जी, बहू जी ने कहा है कि—अगर आपको कोई क़मीज़-कुरता बनवाना हो तो दर्ज़ी को मत दीजियो, मशीन है घर में, वे सी देंगी।"

विकर्ण ने कुछ न कहा।

नौकरानी कहने लगी—"और बाबू जी, बहू जी कहती थीं कि—कोई ज़रूरत हो तो कह दिया करें। कह दिया न करो बाबू जी !"

विकर्ण ने हाथ से छाती दाब कर कहा—"तुम्हारी बहू जी साक्षात् 'देवी' है चम्पा ! नहीं तो भला कोई दूसरे की इतनी परवाह करता है ! मेरी ओर से हाथ जोड़ कर कहना कि—मुझे एहसानों के बोझ से दबायें कि सिर भी न उठा सकूँ !"

चम्पा उस समय नहीं बोली, फिर रुक कर कहा—"इस बेला तो बनेगा खाना कि नहीं, बाबू जी ?"

"ना",—विकर्ण ने कहा—"तबियत ठीक नहीं है मेरी।"

उसी दिन रात को मुहल्ले के रईस लाला बंशीधर के यहाँ महफ़िल थी, कई 'तवायफ़ें' और भाँड़ आये थे। बिहारी ने बालों में नये तर्ज़ से लहर डाला; बढ़िया मलमल का चुन्नट किया कुँरता पहिना, रूमाल पर विलायती सेंट लगाया। हाथी-दाँत के मूठ की छड़ी लेकर घर से निकले। और लाला जी के पास ईरानी क़ालीन पर आ बैठे। बढ़िया खुशबूदार खमीरे की गन्ध उड़ रही थी; सामने चाँदी की चिलम लगा कर पेंचदार बड़ा-सा क़लई का हुक्का रखा था। बंशीधर ने कहा—"लो बिहारी बाबू, क़श लगाओ एक, देखो तो, कैसी मीठी आ रही है !"

तवायफ़ मेहमानों को सलाम कर के गाने को खड़ी हुई। सारंगी पर गज़ फिरा, तबला खटका। ग़ज़ल की लय उड़ी। रात भर महफ़िल गरम थी।...

अनुराधा शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देख रही थी। पुरानी स्मृतियाँ आज फिर से जग उठीं। एक-एक बात, एक-एक दृश्य याद आने लगा। बचपन, विद्यालय, बड़े भैया, छोटे-भैया, अम्मा, विकर्ण ! फिर सुशीला की बातें याद आईं, नवतारा की बातें याद आईं···"दीदी, उनका कुछ हाल मिला ?"

सहसा तड़ित्-वेग से अनुराधा उठ बैठी। कुरसी दीवाल के पास रख ली और झुक कर देखा।···

विकर्ण आँगन में रीती खाट पर छाती के नीचे तकिया दबाये गुम-सुम पड़ा था।

चारों ओर अँधेरा था, सन्नाटा था। लालटेन भी नहीं जली थी।

*अनुराधा खड़ी-खड़ी देखती रही। आज फिर 'दर्द' उठा है! क्या* बहुत पीर हो रही है? एक बार तीव्र इच्छा हुई कि—पुकार कर पूछ ले—कैसी तबियत है आपकी? एक बार तीव्र इच्छा हुई, कह दे कि—मैं आई जाती हूँ, छाती पर दवा लगा दूँगी। इस तरह खुरदरी खाट पर अँधेरे में क्यों पड़े हो? मैं अभी आई!

टप्-टप्-टप् अनुराधा की आँखों से वहीं आँसू झरने लगे। हाय वह क्या करे? चुपचाप बड़ी देर तक खड़ी-खड़ी आँसू बहाती रही।

एक-डेढ़ बजे बिहारी महफ़िल से लौटे। कोई छुट्टी थी दूसरे दिन, किसी त्योहार की। उसी तरह खुर्राटे लेते सात-साढ़े-सात तक-सोते रहे। एक बार आँख खुली तो फिर से पलक मूँद लिया। रात की खुमारी और 'केसर' के नाज़ो-नखरे, सब दिमाग़ में घूम रहे थे। दो-तीन लोट लगाकर उठे तो ऊपर छत पर पड़ोसी को बैठे पाया!

बहुत बुरा लगा। ज़रा ग़ौर से देखा, सोचने लगे—"इसको पहले भी कभी देखा है?···ओह, उस लड़के को इसी ने इकन्नी देकर उसकी बेइज्ज़ती की थी!"

विकर्ण छाती खोलकर सूरज के सामने बैठा था। उसने बिहारी की ओर देखा भी नहीं। उसने उस ओर भूलकर भी देखना उचित न समझा।

फिर वह 'बहिन जी' की बात सोचने लगा कि—उनके पति बहुत बड़े आदमी हैं, सुन्दर हैं, अच्छे हैं। किसी बड़ी पोस्ट पर होंगे। बहिन जी से बहुत प्रेम करते होंगे! बड़े शरीफ़ मालूम होते हैं। कभी ज़ोर से बोलना भी उनका नहीं सुन पड़ा।

दोनों स्त्री-पुरुष महान् हैं। बहिन जी तो जाने कितनी माया-ममता

अपने अन्दर पाले हैं ! देखो तो, कहलवा दिया कि क़मीज़-कुरता हम सी देंगे···कोई ज़रूरत हो तो कह देना !

भला इतना बड़ा हृदय और किसका होगा ? सुना था, बड़े आदमियों के हृदय पत्थर के होते हैं। पर इन्हें देखो !

'बहिन जी' के लिए क्या किया जाये ? कैसे अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित की जाये ?—कुछ पास है ही नहीं।

इधर बिहारी दोपहर की रोटी खाकर फिर सो रहे। नींद पूरी नहीं हुई थी। अनुराधा ने दो-तीन कौर खाया फिर थाली सरका दी। पानी पीकर बाहर उठ आई।

नौकरानी गोदी में कुछ छिपाये खड़ी थी। अनुराधा ने देख पाकर कहा—"क्या दबाये हो धोती में ?"

नौकरानी ने कहा—"तुम्हारी ही चीज़ें हैं; लो !"

तीन-चार पुस्तकें थीं।

नौकरानी चौका-बरतन करने लगी। बिहारी अपने कमरे में सो रहे थे। अनुराधा दुपहरिया में कोठरी में आ लेटती है; उसमें ठंढक रहती है। लेटकर एक-एक करके किताबों के नाम पढ़ने लगी। फिर भीतर खोल-खोल कर देखा। सभी पर कोने में लिखा था—"बहिन जी के चरण-कमलों में—"

एक छोटा-सा उपन्यास भी था। उस पर भी यही लिखा था। नीचे समर्पण-पत्र छपा था—

"···जिनकी मधुर स्मृति आज भी, अतीत की भाँति मेरे बिखरे हुए जीवन के साथ-साथ छाया बनकर चल रही है; उन्हीं देवी के चरण-कमलों में यह मुरझाये फूल चिरकाल तक पड़े रहें !"

यह किसके लिए है ?

अनुराधा ने पृष्ठ लौटकर भूमिका देखी—फिर दो-तीन पृष्ठ उपन्यास के पढ़े···एक-एक घटनायें जैसें सब सत्य थीं। सत्य का आकार !··· फिर और नहीं पढ़ा गया !

समर्पण वाला पृष्ठ खोलकर एक बार आँसू भरी आँखों से और पढ़ा। फिर उस किताब को छाती से लगाकर रो उठी। आँखों से झर-झर आँसू गिरते रहे···!

---

# १८

कोई राह भूला पंछी अपने ही घोंसले के ऊपर से, अपने घोंसले की खोज में भटकता उड़ा चला जा रहा था। पश्चिम का किनारा लाल कर के सूरज का गोला धीरे-धीरे नीचे को उतरा और कहीं डूब गया। दुख-भरी उदासी चारों ओर से अँधेरे को इकट्ठा कर रही थी। आसमान खाली पड़ा था।

अनुराधा घड़ी भर चंचल-अस्थिर खड़ी रही, फिर उसी अँधेरे में इधर को मुँह करके काँपती, करुण आवाज़ से पूछा—"आपकी तबियत अब कैसी है ?"

विकर्ण लेटा था। चपल गति से उठा, और उसी क्षण खड़ा होकर, अँधेरे में छत की ओर हाथ जोड़कर कहा—"नमस्ते ! जी, तबियत अब कुछ ठीक है ?"

अनुराधा ने बहुतेरा रोका, पर किसी तरह भी संवरण नहीं कर सकी; जाने कहाँ से आँसुओं ने भर आकर दृष्टि धुँधली कर दी। विकर्ण की ओर दोनों हथेली जोड़ कर प्रणाम किया और उसी अंध-कार की ओर मुँह कर के रुदन-भरे कण्ठ से बोली—"बैठ जाइए !"

"जी, कोई बात नहीं है"—विकर्ण ने कहा—"जी, मेरी तबियत अब बहुत जल्द ही अच्छी हो जायेगी।"

धीरे से काँपती आवाज़ में बोली—"किसी अच्छे डाक्टर का इलाज कराइए !"

"जी !"

अनुराधा ने धीमे से कहा—"डाक्टर टंडन सुनते हैं बहुत अच्छा इलाज करते हैं।"

"जी !"

"उन्हीं को दिखलाइए।···"

"जी, मैं उनके पास गया था। वे तो बहुत बड़े डाक्टर हैं।"

"क्या कहा उन्होंने ?"—काँपती सी आवाज़ में पूछा।

"जी !"—विकर्ण ने रुककर कहा—"उन्होंने पहिले बतलाया है कि 'एक्स-रे' करेंगे, फिर स्वयं परीक्षा करेंगे, फिर इलाज होगा।"···रुक-रुक कर कहा—"एक्स-रे और परीक्षा की फ़ीस सत्ताइस रुपये बतलाई; इलाज का खर्च अलग···।"

धीमें से पूछा—"फिर आपने एक्स-रे क्यों नहीं कराया ?"

"जी !"···विकर्ण ने ज़रा रुककर कहा—"मैं तो बहुत दरिद्र हूँ; इतने रुपये कहाँ से पाऊँगा बहिन जी !"

उसे आखिर बहिन जी से सब सच्ची-सच्ची बातें कहनी पड़ीं। उसने तो बहुत चाहा था कि वह कुछ न कहे; सब सच-सच बात छिपा ले; पर बहिन जी से वह कुछ न छिपा सका। पर तभी पता चला कि—बहिन जी के घर कोई आ गया है; वे चली गई हैं।

घर के पिछवाड़े एक वकील साहब रहते हैं। उनकी एक पुत्री स्कूल में पढ़ती है। कभी-कभी वह गाया करती है, छत पर लेटी-लेटी। बड़ा मीठा गला है।

बिहारी खाना खा-पीकर बाहर टहलने निकल गये थे। अनुराधा अकेली थी। वकील साहब की पुत्री ने शायद वह कविता पढ़ी है—'स्नेह की यह बाट री सखी !'

शायद बहुत पसन्द है; वही वर्मा जी की कविता—'स्नेह की यह बाट री सखी !'

प्राण सी पतवार कम्पित,
पाल जर्जर दीप झम्पित।
प्रेम की दुःखमय डगर में हर जगह है त्याग री सखी।

उस मधुर-लय पर अनुराधा का ध्यान उच्चट गया। वकील साहब की पुत्री धीरे-धीरे गा रही थी।—'स्नेह की यह बाट री सखी !'

सुनकर अनुराधा की आँखों से धार बँध गई। यही कविता एक दिन उसने विकर्ण से सुनी थी !

—'स्नेह की यह बाट री सखी !'

'......जी, मैं तो बहुत दरिद्र हूँ......इतने रुपये कहाँ से पाऊँगा बहिन जी !...'

अनुराधा ख़ूब फूट-फूट कर रोने लगी और मन ही मन चीत्कार करके कहने लगी—"परमात्मा, मुझसे सहा नहीं जाता; सहा नहीं जाता ईश्वर ! मैं अब मर जाना चाहती हूँ; मुझे मौत दे दो ईश्वर।"

पूर्ण-हड़ताल की तैयारी हो रही थी। मज़दूरों की 'परेड' का प्रदर्शन होता था। एक साथी उसी 'परेड' की फ़ोटो खींचने के लिए कैमरा लाये थे। सो वह उसे ले जाना भूल गये और 'यूनियन' ही में छोड़ गये। विकर्ण उसे अपने घर उठा लाया था। उसमें अभी दो तस्वीरों की 'रील' बाक़ी थी। प्रातः को 'सूर्य-किरण' लेते समय सहसा विकर्ण को याद हो आई। पूर्व की ओर एक बड़ा विशाल पुराना मंदिर था; उसके पीछे नदी बहती थी। थोड़े से सफ़ेद बादलों के टुकड़े ऊपर उड़ रहे थे। वह नीचे से कैमरा उठा लाया और खड़ा होकर घूम-घूम कर ठीक जगह देखने लगा।

अनुराधा स्नानागार से नहाकर निकली। बिहारी उसी समय टहल कर लौटे। अनुराधा को केवल साड़ी पहिने भीतर जाते देखा और ऊपर हाथ में कैमरा लिये देखा पड़ोसी को ! सारे शरीर में आग लग गई।

पर विकर्ण को ध्यान न था, वह कैमरा ठीक कर रहा था। उसने भूलकर भी इधर नहीं देखा था। बिहारी ने वहीं से पुकारा—"मिस्टर !"

विकर्ण ने चौंक कर सिर उठाया, घबरा कर बोला—"जी !"

बिहारी ने हाथ उठा कर कहा—"ज़रा नीचे तशरीफ़ लाइए, बाहर।"

आस-पास के चार भलेमानस इकट्ठे हो गये। बिहारी ज़मीन पर छड़ी ठोंक कर, क्रोध-भरे स्वर में बोला—"और आप मान नहीं रहे हैं; मेरी आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं।"

विकर्ण सिर डाले खड़ा था।

एक पड़ोसी ने कहा—"आखिर आप रोज़ छत पर जाते ही क्यों हैं?"

बिहारी ने कहा—"इसलिए कि पास-पड़ोस की औरतें देखकर आशिक़ हो जायें; राजा इन्द्र के अखाड़े से आये हैं न!"

विकर्ण ने भरे गले से कहा—"मैं इतना बदशकल ग़रीब आदमी; मैं किसी को······।"

बिहारी ने चिल्लाकर कहा—"तो फिर आप रोज़ छत पर क्यों टहलते हैं?"

"मैं सीने पर सूरज की किरणें लेता हूँ।"

"जी!"

एक बड़े-बूढ़े ने कहा—"सूरज की किरण लेना है तो बग़ीचे में जाया कीजिए। छत पर चारों ओर बहू-बेटियाँ······।"

बिहारी ने बात काटकर कहा—"और आप अभी क्या कर रहे थे?"

"जी!"—विकर्ण ने थर-थर काँपते हुए कहा—"फ़ोटो ले रहा था मन्दिर का।"

बिहारी ने कड़ककर कहा—"मैं अब आपके मुँह पर जूता मार दूँगा। मन्दिर का फ़ोटो ले रहा था कि साला······नालायक़!"

लोगों ने कहा—"बहुत भद्दी बात है! भला सोचिए तो औरतों के फ़ोटो लेना!"

बिहारी ने वकील साहब से कहा—"आप की क्या राय है, इस केस को पुलिस में दे दूँ ?"

वकील साहब ने कहा—"जाने दीजिए !"

बिहारी ने स्वर चढ़ाकर कहा—"इन्हें ज़रा फ़ोटो लेने का मज़ा तो मिल जाये।"

विकर्ण ने कहा—"आप चाहें तो मुझे पुलीस में दे दें; पर मैं सच कहता हूँ..."

बिहारी ने बिल्कुल पास आकर गरजकर कहा—"झूठ मत बोलो, मैं कहता हूँ झूठ मत बोलो, नहीं तो अभी तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा बेहया-बेग़ैरत !...तू चढ़ा क्यों छत पर, चढ़ा क्यों ? बेपरदा औरतों की तस्वीर खींच रहा था ? लगाऊँ गिन कर पचास जूते ?"—और उन्होंने जूता उतार लिया।

वकील साहब ने हाथ पकड़ कर पीछे को खींच लिया, बोले—इतनी लानत-मलामत ही बहुत है। अब जाने दीजिए।"

बिहारी ने हाथ से जूता ज़मीन पर डाल कर कहा—"इतने हयादार होते तो यह करतूतें न करते ! तिस पर तो खद्दर पहिने हैं; देश-भक्त हैं। औरतों पर डोरा डालते फिरते हैं, कभी आईना उठा कर अपनी शकल भी तो देखी होती !"

वकील साहब ने कहा—"ख़तम कीजिए !"

बिहारी ने कहा—"वकील साहब, आप जानते हैं, मैं किस आदत का आदमी हूँ। इनकी सब हरकतें शुरू ही से देख रहा हूँ; सोचा—चलो भाई पड़ोसी हैं, जाने दो, ग़म खाना ठीक है। पर भला यह मान सकते थे ? आप को मालूम है ? इन्होंने मेरे पीछे घर फल भिजवाये थे,, एक टोकरी ?"

सुनने वाले सन्न रह गये।

विकर्ण से कोई जवाब न आया।

वकील साहब ने कहा—"ग़ज़ब।"

मुझसे और इनसे यही पहली बार आज बात-चीत हुई है। साहब, यह आदमी अव्वल नम्बर का लुच्चा और बदमाश है—यही 'सफ़ेद-बदमाश' कहलाते हैं !

नौकरानी ने आकर कहा—"आपको ऊपर बुला रही हैं।" पर बिहारी न हिले। विकर्ण की ओर अग्नेय-नेत्रों से देख रहे थे। पड़ोसी ने कहा—"जाइये सुन आइये, ऊपर बुला रही हैं आपको···"

बिहारी ने आँगन में छड़ी फेंक कर पूछा—"क्या है?"

अनुराधा के मुख पर रक्त नहीं था; फटी-फटी आँखों से पति की ओर करुण स्वर में देखकर कहा—"क्यों झगड़ा बढ़ा रहे हो ?"

"मैं झगड़ा बढ़ा रहा हूँ ! अभी तो उस साले की हड्डी-पसली एक करनी है, मैं उसे बिना ठोंके नहीं छोड़ूँगा—"

अनुराधा ने विनती करके कहा—"तुम्हारे पैरों पड़ूँ !······मार-पीट मत करना !"

बिहारी ने कहा—"क्यों ! वह तुम्हारा कोई लगता है ? उसके लिए क्यों दर्द है तुम्हें ? शायद नज़र लड़ गई है उससे······।"

अनुराधा को जैसे गरम लोहा छू गया। झटके के साथ उसका सिर ऊपर को उठ गया और दृढ़ स्वर में बोली—"आप···मुझपर···।"

बिहारी खट-खट करते नीचे उतर गये।

विकर्ण अपने ज़ीने के किवाड़ पकड़े खड़ा रो रहा था। सब लोग शान्त भाव से समझा रहे थे। बिहारी को उसने सामने देखा तो दोनों हाथ जोड़कर, उसी तरह रोते-रोते बोला—"मुझे क्षमा कर दीजिए भाई साहब······।"—और अधिक बोला नहीं गया।

बिहारी ने यह दृश्य देखा तो शान्त हो गये। गम्भीर स्वर में बोले—"जाइये, मैंने तो पहले ही आपको माफ़ कर दिया ! अब आइन्दा को ख्याल रखिये।"

बड़े-बूढ़ों ने और वकील साहब ने कहा—"हाँ, अब कभी आप

से ऐसी ग़लती न हो; आप भले घर के आदमी हैं—ये बातें तो शोहदों और गुण्डों की हैं, शरीफ़ों की नहीं, रोइये मत !"

अनुराधा घर के भीतर बेसुध पड़ी थी। दिन भर और रात भर तेज़ बुख़ार में उसकी देही जलती रही। बिहारी घर में नहीं थे। नौकरानी ने पास आकर पुकारा—"बहू जी !"

अनुराधा ने बुख़ार में लाल हुई अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर, सूखे होठों से कहा—"क्या है ?"

नौकरानी ने शीशे का जार सामने पृथ्वी पर रख कर कहा—"बाबू जी रात पड़ोस का मकान छोड़ कर चले गये। यह मुरब्बा लौटा गये हैं।"

अनुराधा ने पागलों की तरह आँखें फाड़ कर कहा—"चले गये ! कहाँ गये ?"—वह थर-थर काँपती हुई उठकर बैठ गई।

नौकरानी ने कहा—"सो मुझे नहीं बताया;···कहाँ रख दूँ यह मुरब्बा ?"

अनुराधा फिर तकिये पर लुढ़क गई और आँखें बन्द कर लीं।

---

## १६

दिन-दिन अनुराधा की तबियत गिरती गई; दिन पर दिन उसका स्वास्थ्य नष्ट होता गया। इन्द्र उसे यही सोच कर लाया था कि जलवायु के परिवर्तन से उसका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा; पर रोगिणी को कुछ और ही होना था।

जिस तरह नदी की लहर जाकर वापस नहीं लौटती, वायु का झोंका लगकर पीछे नहीं लौटता, ऋतु जाकर वापस नहीं आती; उसी प्रकार एक बार अनुराधा का गया हुआ स्वास्थ्य फिर वापस नहीं लौट सका। इन्द्र उसको तसल्ली देता, नवतारा उसको ढाढ़स बँधाती; पर अनुराधा

किसी की बातों पर ध्यान ही न देती। जीवन जैसे उसके लिए एक तुच्छ वस्तु थी; एक हेय सामग्री थी।

अनुराधा क्यों अपने भैया के यहाँ आई। पूरे चार वर्षों में क्यों। इतने अधिक दिनों वह यहाँ टिकी, इसका किसी को भक भी नहीं था। प्रति सप्ताह बिहारी का पत्र आता था; सान्त्वना से परिपूर्ण, अनुरोधों पर अनुरोध, पर अनुराधा जैसे काठ की प्रतिमा थी। हर बार पत्र लिख कर आता—"अनुराधा ! तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है ? क्यों नहीं तुम अब शहर आ जातीं, यहीं आकर किसी बड़े डाक्टर का इलाज करो। देखो, मैं अमुक दिन की गाड़ी से तुम्हें लेने आ रहा हूँ, तुम तैयार रहना।" पर अनुराधा हर बार यही उत्तर देती—"मेरा स्वास्थ्य अब ठीक हो रहा है, बहुत जल्दी ही रोग-मुक्त हो जाऊँगी, यहाँ का जलवायु स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है, अभी आप कुछ दिनों और न आइए। मैं जब अच्छी हो जाऊँगी तो आपको सूचना भेजूँगी। आप आकर लिवा जाइएगा।

बिहारी, अनुराधा के चरित्र की दृढ़ता से पूर्णरूपेण परिचित थे। उन्होंने अधिक ज़िद्द नहीं की। और सच तो यह है कि अनुराधा से दूर रह कर वह आज कल अत्यन्त प्रसन्न थे। केसर के यहाँ आने-जाने का उनको एक नया चस्का लग चुका था। इसलिए उन्होंने भी कदाचित् इस पर ध्यान नहीं दिया।

प्रातः को इन्द्र जब दवा खिलाने के लिए अनुराधा के पास बैठा तो अनुराधा की आँखें छलछला आईं। इन्द्र ने अपने हाथों से उसके आँसू पोंछ दिये। आँसू हृदय की वाणी है, मौन आत्मा का गान है। आँसू और मौन के बीच अनुराधा खोई हुई थी। उसका हृदय हाहाकार कर रहा था। इन्द्र ने उसका माथा सहलाते-सहलाते पूछा—"क्या बात है अन्नी ? क्यों दुःख कर रही हो ?"

अनुराधा कुछ बोली नहीं। केवल भैया की गोदी में सिर रख कर खूब फबक-फबक कर रोई। इन्द्र पूछते-पूछते थक गये, पर उसने एक

बात भी नहीं कही। कहती कैसे ? उसका हृदय सागर की भाँति गंभीर जो है।

सूर्य निकलने पर पक्षी जिस तरह चहचहाकर वृक्ष पर कलरव कर उठता है और फिर उड़ जाता है, उसी तरह अनुराधा अपने हृदय को खोलकर रख देना चाहती थी; पर वह आज भी ऐसा न कर सकी। इन्द्र ने जो देखा कि अनुराधा उससे कुछ न बतायेगी, केवल रोयेगी ही, तो उसने जाकर नवतारा को उसके पास भेज दिया। नवतारा से आजतक उसने कभी अपनी कोई भी बात नहीं छिपाई थी। एक-एक बात नवतारा ने पूछी और एक-एक बात अनुराधा ने बताई। जिस तरह से इन दोनों के बीच यह मैत्री का सम्बन्ध अटूट रहता चला आया है, वैसा ही अब भी है। नवतारा से एक-एक बात अनुराधा ने बताई। सारी घटना सुनाकर अनुराधा रो उठी। नवतारा करुणा भरे कम्पित स्वर में बोली—"वह आदमी नहीं, देवता हैं बहिन !"

अनुराधा चुप रही।

नवतारा ने फिर कहा—"और उन्हें मालूम था कि वह बहिन जी तुम्हीं हो ?"

"न !"

"उफ़ !"—एक नीरव निस्पन्द खींच कर नवतारा बोली।

अनुराधा अब भी कुछ नहीं बोली। केवल उसकी आँखों से झर-झर करके मोती बरसते रहे। थोड़ी देर निस्तब्धता छाई रही। नवतारा का मन जाने कहाँ उड़कर चला गया था। सोचती रही वह—"उफ़ ! उस अभागे आदमी के जीवन में क्या कभी आदर-सम्मान, दुलार-प्यार, माया-ममता और धन-गौरव बदा ही नहीं है। जहाँ भी वह रहा, निरादर और उपेक्षित बन कर। आज तक किसी पर जैसे उसे क्रोध आया ही नहीं। अपने ही को सबसे गिरा हुआ जाना। अपने ही पर खीझ लिया और अपने पर ही दो आँसू बहा कर चुप हो गया। उसका जीवन नदी के समान है जो संसार का सुख-दुःख, फूल और कूड़ा

दोनों ले जाती है। दूसरों का उपकार करना ही जिसके जीवन का ध्येय है। पर फिर भी कितना निरादरित और निरपेक्षित है वह...

अनुराधा ने नवतारा का हाथ पकड़ कर छाती से लगा कर कहा—"क्या अन्तिम बेला मेरा एक काम कर सकोगी नवतारा ?"

टप-टप करके आँसू नवतारा की आँखों से गिरने लगे। करुण चीत्कार करके बोली—"यह तुम क्या कह रही हो अन्नी ?"

"सच कह रही हूँ नवतारा ! अब मेरी इच्छा नहीं रही, केवल एक साध बाकी है।"

नवतारा ने सकरुण नेत्रों से अनुराधा की आँखों में आँख डाल दी। मुँह से एक शब्द भी नहीं बोली। यह भी नहीं पूछा कि तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है ? पर जैसे अनुराधा को उसके हृदय की एक-एक बात मालूम हो गई। उसने अपना हृदय नवतारा के आगे खोल कर रख दिया, बोली—"आज तक तुम से कुछ नहीं कहा, कभी कोई इच्छा नहीं प्रकट की। यह आज पहली बार और अन्तिम बार तुमसे प्रार्थना कर रही हूँ बहिन।"

नवतारा चुप रही।

अनुराधा कहती गई—"एक बार उन्हें यहाँ बुला दो, किसी भी तरह उनके पास खबर भिजवा दो कि उनकी अनुराधा अन्तिम बेला उनके दर्शन करना चाहती है।"

नवतारा ने केवल इतना ही पूछा—"उनका पता मालूम है ?"

"पता तो नहीं मालूम, पर कहीं न कहीं वह कानपूर ही में होंगे।"

अनुराधा बोली—"वे मज़दूरों के अन्दर काम करते हैं। उनका काम छोड़ कर वह अन्यत्र कहीं नहीं जा सकते। मज़दूरों के लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है।"

नवतारा ने मन ही मन इस उपेक्षित और निरादरित मनुष्य को प्रणाम किया। संध्या को मौका पाकर इन्द्र से एक-एक बात नवतारा

ने कह सुनाई। आँसू और सन्तोष के बीच वह अनुराधा के जीवन की यह दर्द भरी कहानी सुनता रहा।

दूसरे दिन मेल से बैठ कर वह कानपूर जा पहुँचा। पागलों की भाँति शहर का कोना-कोना छान मारा पर विकर्ण का कहीं पता न चला। संध्या की बेला एलगिन मिल के फाटक पर जो मज़दूरों की सभा होने वाली थी, इन्द्र भी वहाँ गया। अपमान और ग्लानि की प्रतिमा बना विकर्ण उन ग़रीब मज़दूरों को जीवन का तत्व समझा रहा था कि इस आशा भरे संसार में जीवन क़ायम रखने के लिए है, बर्बाद करने के लिए नहीं।

जब सभा समाप्त हुई तो विकर्ण धीरे-धीरे एक ओर को जाने लगा। मनुष्यों के अपार समुद्र को चीरता हुआ इन्द्र विकर्ण के बराबर जा पहुँचा। पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने पुकारा—"विकर्ण भैया !"

और तभी विकर्ण ने घूम कर इन्द्र की ओर देखा। इन्द्र को छाती से लगाते हुए उसने केवल इतना ही कहा—"तुम यहाँ कहाँ इन्द्र ?"

इन्द्र की आँखें भर आईं। उसके मुँह से आगे फिर एक भी शब्द नहीं निकल सके।

दोनों टहलते-टहलते मज़दूरों की उन भग्नावशेष क्वाटरों की ओर गये जहाँ वास्तविक मानव-विभूतियाँ निवास करती हैं। एक टूटी हुई कच्ची कोठरी का द्वार खोलते हुए विकर्ण ने कहा—"इन्द्र, संसार की खाक छानने के पश्चात् यदि कहीं मुझको सहारा मिला है सो यह वही स्थान है। मध्य वर्गीय लोगों के बीच, आदर और सम्मान के बदले घृणा और तिरस्कार पाकर यह हृदय क्षुब्ध हो उठता था। यहाँ उन सबसे दूर हूँ। आदर और सम्मान का यहाँ नाम नहीं; घृणा, तिरस्कार और उपेक्षा ही तो यहाँ जीवन के दूसरे नाम हैं। इनके बिना जीवन रसहीन भोजन के समान है। वहाँ मध्यवर्ग के लोगों के बीच अपने

भाग्यहीन कर्म के ऊपर ईर्षा होती थी। यहाँ जब दूसरों से अपनी तुलना करता हूँ तो सन्तोष होता है।

इन्द्र आज भी बालक के समान उसके सामने बैठा उसके नवीन दार्शिनिक विचारों की विवेचना करता रहा।

विकर्ण कहता गया—"यह टूटा हुआ घर देखकर तुम्हें आश्चर्य होता होगा इन्द्र ! पर इसमें मैं अत्यन्त सुखी हूँ। यहाँ मुझे सन्तोष है।"

जब दोनों खाना खाने बैठे तो विकर्ण ने गंभीर होकर पूछा—"अम्मा कैसी हैं ? देखो तो उस जननी के बारे में भी अभी तक कुछ नहीं पूछ सका, केवल अपना ही सुख-दुख तुमको सुनाता रहा।"

रुदन भरे कंठ से इन्द्र केवल इतना ही कह सका—"दो वर्ष हो चुके, अम्मा अब नहीं रहीं"—और झर-झर करके उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

विकर्ण शान्त रहा। वह कुछ नहीं बोला। उसके हृदय में कोई भी तूफ़ान नहीं उठा। प्रशान्त महासागर की भाँति गंभीर उसका हृदय एक बार भी नहीं हिला। कुछ क्षण पश्चात् केवल इतना ही पूछा—"और अनी ?"

इन्द्र ने एक निश्वास लेते हुए कहा—"अन्तिम बेला दर्शन पाने के लिए उसने तुम्हें बुलाया है।"

"यह कैसे हो सकता है इन्द्र ? मेरा जाना किसी भी तरह सम्भव नहीं। सारी मिलें बन्द हैं। यह हड़ताल की लगाई हुई मेरी आग धू-धू करके जल रही है। इस भयङ्कर आग के बीच उनको अकेला छोड़ कर किसी तरह भी कहीं नहीं जा सकता।"

"पर अनुराधा भी कुछ ही घड़ियों की मेहमान है।"

पागलों की भाँति आँखें फाड़-फाड़ कर, विकर्ण इन्द्र की ओर देखता रहा और असहाय बन्दी की भाँति धीरे से केवल इतना ही कह सका—"मैं कहीं भी नहीं जा सकता, मैं मजबूर हूँ। यह प्रश्न हजारों मज़दूरों के जीवन-मरण का प्रश्न है। मेरी एक क्षण की अनुपस्थिति

वर्षों की जली हुई इस महाज्योति का अन्त कर देगी।"—पीड़ा से व्यथित होकर उसने कहा—"कुछ भी हो इन्द्र, मैं कहीं नहीं जा सकता।"

और उदास मुख लिये इन्द्र ने अनुराधा के सामने आकर केवल आँसू ढरका दिये। तो अनुराधा को जैसे तनिक भी वेदना नहीं हुई, मरते हुए मनुष्य के सामने संसार के सुख-दुख समान हो जाते हैं। मान-अपमान में कोई भेद नहीं रह जाता।

इन्द्र उसके सिरहाने बैठा घण्टों उसके सिर को सहलाता रहा और अपने हृदय के भीतर ढेरों आँसू बहाता रहा। एक बार केवल धीरे से इतना ही कहा—"अभागी बहिन, तुमने मनुष्य से न करके देवता से क्यों प्रेम किया था, क्यों नाता जोड़ा था?......"

---

## २०

आकाश में मेघ गड़गड़ा रहे थे, बिजली चमक रही थी। चारों ओर घोर अँधेरा छा रहा था। काली रात अपनी पूरी भयंकरता के साथ बढ़ी चली आ रही थी। इन्द्र पड़ोस के गाँव में वैद्य जी को बुलाने गया था। नवतारा अनुराधा के पास बैठी थी।

मृत्यु से पहले शरीर में थोड़ी-सी स्फूर्ति आ जाती है और उसी स्फूर्ति में उसकी स्मृति सजग हो उठती है। एक-एक करके पिछली बातें अनुराधा के सामने आती गईं और अनुराधा उन्हें स्पष्ट रूप से देखती गई। बड़ी ज़ोरों से हरहरा कर हवा बह रही थी। अनुराधा को ठंड सी लगी। उसने नवतारा का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"बहिन, ज़रा मुझे ओढ़ा दो।"

नवतारा ने लिहाफ़ ऊपर खसका दिया। फिर स्मृति सजग हुई। अनुराधा बोली—"नवतारा बहिन, गाय बाहर बँधी है, उसे ओसारे में बाँध दो, बादल घिर आये हैं, मुमकिन है पानी बरस जाये।"

नवतारा गाय बाँधने बाहर चली गई। गाय बाँधकर जब लौटी

तो अनुराधा ने फिर कहा—"बहिन देखो, कण्डे और उपले बाहर तो नहीं है, उन्हें अन्दर रख दो।"

नवतारा लालटेन लेकर बाहर जाने लगी तो बीच ही में रोककर अनुराधा ने कहा—"यहाँ दिया जला कर रख दो, अँधेरा छा रहा है।"

नवतारा ने दिया जला कर सिरहाने रख दिया और लालटेन लेकर बाहर चली गई।

खर-खर करके पीपल के पत्ते बज उठे। हवा का एक झोंका आया और चला गया। आकाश में बादल गड़गड़ा उठे, बिजली चमकी और बुझ गई। तभी द्वार पर किसी की छाया आकर खड़ी हो गई। अनुराधा ने पुकारा—"तुम कौन हो?"

कोई कुछ नहीं बोला।

छाया वहाँ से हिली तक नहीं। अनुराधा ने फिर पुकारा—"कौन हो? बोलते क्यों नहीं?"

फिर भी कोई कुछ नहीं बोला।

अनुराधा ने फिर पुकारा—"कौन हो तुम? क्यों नहीं बोलते हो? यहाँ क्यों आये हो?"

कोई कुछ नहीं बोला। केवल छाया धीरे-धीरे उसकी खाट तक पहुँच गई।

आसमान पर गड़गड़ करके बादल गरज रहे थे। बिजली चमक रही थी। घना अँधेरा चारों ओर व्याप्त हो रहा था। धीरे-धीरे हवा तेज़ हो रही थी। पीपल के पत्ते छर-छर करके बजने लगे। दिये के झिलमिल प्रकाश में अनुराधा ने देखा—विकर्ण सामने खड़ा है। उसको अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। आँखें मलकर देखा-नहीं, यह और कोई नहीं, विकर्ण ही है। उसने उसकी तरफ़ एकटक देखते हुए कहा—"तुम आ गये!"

"तुम बुलाती और मैं कैसे न आता।"

"अच्छा किया, इस अन्तिम बेला अपनी इस दासी को माफ़ करने आ गये।"

"यह तुम क्या कह रही हो अनुराधा ?"

"नहीं, वह उस दिन उन्होंने तुम्हारा जो अपमान किया था उसी की मैं क्षमा चाहती हूँ।"

"नहीं, मेरा किसी दिन किसी ने कोई भी अपमान नहीं किया। यह तुम क्या कह रही हो अनुराधा। मेरा किसी ने कभी अपमान नहीं किया।"

अनुराधा के होठों पर एक हलकी-सी मुस्कराहट की रेखा खिच गई; वह मुस्कान जो मरने से पहले लोगों के होठों पर नाचती है। और अनुराधा करुण स्वर में बोली—"तुम नहीं जानते, लेकिन मैं जानती हूँ···वह बहिन जी के पति ने···"

तभी हवा का एक झोंका आया और टिमटिमाते हुए दीपक का प्रकाश चंचल हो उठा। अनुराधा ने मान भरे स्वर में कहा—"अपनी वह कविता सुनाओगे ?"

"कौन-सी ?"

"प्रेम वाली !"

विकर्ण गुनगुनाता रहा—

स्नेह की यह बाट री सखी
प्रणय की दुखमय डगर में
हर जगह हैं त्याग री सखी

तभी हवा का एक गहरा झोंका आया और भक करके दीपक बुझ गया। अनुराधा की गरदन ढुलक पड़ी।

क्षण भर को आकाश में बादलों के दो टुकड़े गड़गड़ा उठे। बिजली चमकी और क्षणिक प्रकाश हुआ। अनुराधा की अँगूठी का नीलम उस प्रकाश में चमक उठा और विकर्ण की आँखों से टप-टप करके दो आँसू निकल पड़े और उसने केवल इतना ही कहा—"अभागी बहिन !"